उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

कथा साहित्य (भाग दो)

चतुर्थ सेमेस्टर 607

सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

विशेषज्ञ समिति

प्रो.एच.पी.शुक्ल निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्तविश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो. सत्यकाम हिन्दी विभाग इग्नू, नई दिल्ली
प्रो.आर.सी.शर्मा , हिन्दी विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़	
डा. राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा. शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा. राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा. शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ. अवधेश दीक्षित संपादक, परमिता त्रैमासिक शोध पत्रिका , वाराणसी	9, 10, 13, 14, 15
डॉ. शीला रजवार नैनीताल उत्तराखण्ड	11, 12

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2022

सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

ISBN - 978-93-84632-71-7

चतुर्थ सेमेस्टर 607

खण्ड 4 हिंदी कहानी: पाठ एवं स्वरूप	पृष्ठ संख्या
इकाई 9 बड़े भाईसाहब: पाठ एवं विवेचन	114-124
इकाई 10 बड़े भाईसाहब: विश्लेषण और मूल्यांकन	125-134
इकाई 11 सुहागिनी: पाठ एवं विवेचन	135-153
इकाई 12 सुहागिनी: विश्लेषण और मूल्यांकन	154-165
खण्ड 5 हिंदी उपन्यास: पाठ एवं विवेचन	पृष्ठ संख्या
इकाई 13 जैनेन्द्र कुमार: परिचय एवं कृतित्व	166-176
इकाई 14 त्यागपत्र: पाठ एवं व्याख्या	177-187
इकाई 15 त्यागपत्र: संरचना व शिल्प	188-200

इकाई 9 - बड़े भाई साहब : प्रेमचंद - पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 जीवनी/व्यक्तित्व
9.3.1 कृतित्व
9.3.2 कृतियाँ
9.4 रचना संसार
9.5 विशेषताएँ
9.5.1 कथ्य की दृष्टि से
9.5.2 भाषा की दृष्टि से
9.6 बड़े भाई साहब कहानी की विशेषता
9.7 प्रेमचंद : मूल्यांकन
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

अपने युग के सर्वमान्य द्रष्टा प्रगतिशील कथाकार मुंशी प्रेमचंद की प्रासंगिकता आज प्रश्नों के घेरे में है। कई बार नासमझी में उन पर पुरानेपन का आरोप लगाया जाता है। कुछ सुधी आलोचकों की दृष्टि में उनका साहित्य वर्तमान चुनौतियों और समस्याओं का मुकाबला करने में असमर्थ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनका साहित्य अपने समय के भारतीय समाज का जीवंत और प्रामाणिक दस्तावेज है साथ ही उनका सुधारवाद राष्ट्रीय आंदोलन की तत्कालीन चेतना और गांधीवादी जीवन दर्शन व साम्यवाद से एक सीमा तक प्रभावित भी है किन्तु आजादी के बाद उन मूल्यों व आदर्शों की चमक फीकी पड़ती गई। आज नवीन कथ्य, नई टेकनीक, अभिनव शिल्पगत प्रयोग और अत्याधुनिक कला-प्रवृत्तियाँ-नग्नता, अतियथार्थवाद, पाश्चात्य

प्रभाव आदि के अंतर्गत कथा-साहित्य में विशुद्ध कलावादी मानदण्डों को प्रमुखता मिल रही है, जिसके फलस्वरूप मुझे चाँद चाहिए, दो मुरदों के लिए गुलदस्ता जैसी रचनाएँ पुरस्कृत हो रही है ऐसे में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सामाजिक कथाकार के लेखन की प्रासांगिकता को लेकर कुछ प्रश्न व जिज्ञासाओं का उठना स्वाभाविक ही है। अपनी सांस्कृतिक विरासत से निरंतर दूर, वैभव की सर्वग्रासी चमक से विमोहित और चाँद को छू लेने को आतुर आज का युवा भी जानना चाहता है कि आखिर ऐसा क्या है प्रेमचंद के साहित्य में? जो इसे पढ़ा जाए अथवा उनके विचार भावी पीढ़ी के लिए धरोहर के रूप में संरक्षित रखे जाएँ। इस नई पीढ़ी को हम प्रेमचंद की मूलभूत जीवन दृष्टि, उनकी भाषागत सामर्थ्य, मानवतावाद या फिर परंपरा मात्र की दुहाई देकर संतुष्ट नहीं कर सकते, अतएव यहां केवल उन्हीं बिंदुओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है, जो प्रेमचंद-साहित्य की प्रासांगिकता के मेरूदण्ड हैं। इस इकाई में हम प्रेमचंद जी के कहानी कला के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ हम उनकी प्रसिद्ध कहानी ''बड़े भाई साहब'' की विशेषता को जानने का प्रयास करेंगे।

9.2 उद्देश्य

एम.ए.एच.एल 201प्रश्न पत्र की यह नवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- कहानी सम्राट मुंशी प्रेमचंद की जीवनी का अवलोकन कर सकेंगे।
- मुंशी प्रेमचंद के साहित्यिक पक्ष का विस्तृत अध्ययन करेंगे ।
- प्रेमचंद जी की कहानी शैली के वैशिष्ट का अध्ययन करेंगे ।
- प्रेमचंद जी की कहानी ''बड़े भाई साहब'' की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

9.3 जीवनी/व्यक्तित्व

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी के निकट लमही गाँव में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी था तथा पिता मुंशी अजायबराय लमही में डाकमुंशी थे। उनकी शिक्षा का आरंभ उर्दू, फारसी से हुआ और जीवन-यापन अध्यापन से। 1898 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। 1910 में उन्होंने इंटर पास किया और 1919 में बी.ए. पास करने के बाद स्कूलों के डिप्टी सब-इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। सात वर्ष की अवस्था में उनकी माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो जाने के कारण उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा। उनका पहला विवाह उन दिनों की परंपरा के अनुसार पंद्रह साल की उम्र में हुआ, जो सफल नहीं रहा। वे आर्य समाज से प्रभावित रहे, जो उस समय का बहुत बड़ा धार्मिक और सामाजिक आंदोलन था। उन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया और 1906 में दूसरा विवाह अपनी प्रगतिशील परंपरा के अनुरूप बाल-विधवा शिवरानी देवी से किया। उनकी तीन संताने

हुईं- श्रीपत राय, अमृतराय और कमला देवी श्रीवास्तव। 1907 में उनकी रचना सोजे-वतन (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया और उन पर जनता को भड़काने का आरोप लगाया। सोजे-वतन की सभी प्रतियां जब्त कर नष्ट कर दी गई। कलेक्टर ने नवाबराय को हिदायत दी कि अब वे कुछ भी नहीं लिखेंगे, यदि लिखा तो जेल भेज दिया जाएगा। इस समय तक प्रेमचंद ,धनपत राय नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित होने वाली जमाना पत्रिका के सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम से लिखने की सलाह दी। इसके बाद वे प्रेमचन्द के नाम से लिखने लगे। जीवन के अंतिम दिनों में वे गंभीर रुप से बीमार पड़े। उनका उपन्यास मंगलसूत्र पूरा नहीं हो सका और लंबी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया।

प्रेमचंद को प्रायः 'मुंशी प्रेमचंद' के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद के नाम के साथ 'मुंशी' कब और कैसे जुड़ गया? इस विषय में अधिकांश लोग यही मान लेते हैं कि प्रारम्भ में प्रेमचंद अध्यापक रहे। अध्यापकों को प्राय: उस समय मुंशी जी कहा जाता था। इसके अतिरिक्त कायस्थों के नाम के पहले सम्मान स्वरूप 'मुंशी' शब्द लगाने की परम्परा रही है। संभवत: प्रेमचंद जी के नाम के साथ मुंशी शब्द जुड़कर रूढ़ हो गया। प्रोफेसर शुकदेव सिंह के अनुसार प्रेमचंद जी ने अपने नाम के आगे 'मुंशी' शब्द का प्रयोग स्वयं कभी नहीं किया। उनका यह भी मानना है कि मुंशी शब्द सम्मान सूचक है, जिसे प्रेमचंद के प्रशंसकों ने कभी लगा दिया होगा। यह तथ्य अनुमान पर आधारित है। लेकिन प्रेमचंद के नाम के साथ मुंशी विशेषण जुड़ने का प्रामाणिक कारण यह है कि 'हंस' नामक पत्र प्रेमचंद एवं 'कन्हैयालाल मुंशी' के सह संपादन मे निकलता था। जिसकी कुछ प्रतियों पर कन्हैयालाल मुंशी का पूरा नाम न छपकर मात्र 'मुंशी' छपा रहता था साथ ही प्रेमचंद का नाम इस प्रकार छपा होता था- (हंस की प्रतियों पर देखा जा सकता है)। संपादक मुंशी, प्रेमचंद। 'हंस' के संपादक प्रेमचंद तथा कन्हैयालाल मुंशी थे। परन्तु कालांतर में पाठकों ने 'मुंशी' तथा 'प्रेमचंद' को एक समझ लिया और 'प्रेमचंद'- 'मुंशी प्रेमचंद' बन गए। यह स्वाभाविक भी है। सामान्य पाठक प्राय: लेखक की कृतियों को पढ़ता है, नाम की सूक्ष्मता को नहीं देखा करता। आज प्रेमचंद का मुंशी अलंकरण इतना रूढ़ हो गया है कि मात्र मुंशी से ही प्रेमचंद का बोध हो जाता है तथा 'मुंशी' न कहने से प्रेमचंद का नाम अधूरा-अधूरा सा लगता है।

प्रेमचंद ने अपनी कला के शिखर पर पहुँचने के लिए अनेक प्रयोग किए। जिस युग में प्रेमचंद ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और प्रगतिशीलता का कोई मॉडल ही उनके सामने था सिवाय बांग्ला साहित्य के। उस समय बंकिम बाबू थे, शरतचंद्र थे और इसके अलावा टॉलस्टॉय जैसे रुसी साहित्यकार थे। लेकिन होते-होते उन्होंने गोदान जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की जो कि एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है। उन्होंने चीजों को खुद गढ़ा और खुद आकार दिया। जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था तब उन्होंने कथा साहित्य द्वारा हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं को जो अभिव्यक्ति दी उसने सियासी सरगर्मी को, जोश को और आंदोलन को सभी को उभारा और

उसे ताकतवर बनाया और इससे उनका लेखन भी ताकतवर होता गया। प्रेमचंद इस अर्थ में निश्चित रुप से हिंदी के पहले प्रगतिशील लेखक कहे जा सकते हैं। 1936 में उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन को सभापति के रूप में संबोधन किया था। उनका यही भाषण प्रगतिशील आंदोलन के घोषणा पत्र का आधार बना। प्रेमचंद ने हिन्दी में कहानी की एक परंपरा को जन्म दिया और एक पूरी पीढ़ी उनके कदमों पर आगे बढ़ी, 50-60 के दशक में रेणु, नागार्जुन और इनके बाद श्रीनाथ सिंह ने ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं, वो एक तरह से प्रेमचंद की परंपरा के तारतम्य में आती हैं। प्रेमचंद एक क्रांतिकारी रचनाकार थे, उन्होंने न केवल देशभक्ति बल्कि समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को देखा और उनको कहानी के माध्यम से पहली बार लोगों के समक्ष रखा। उन्होंने उस समय के समाज की जो भी समस्याएँ थीं उन सभी को चित्रित करने की शुरुआत कर दी थी। उसमें दलित भी आते हैं, नारी भी आती हैं। ये सभी विषय आगे चलकर हिन्दी साहित्य के बड़े विमर्श बने। प्रेमचंद हिन्दी सिनेमा के सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यकारों में से हैं। सत्यजित राय ने उनकी दो कहानियों पर यादगार फिल्में बनाईं। 1977 में शतरंज के खिलाड़ी और 1981 में सद्गति। उनके देहांत के दो वर्षों बाद के सुब्रमण्यम ने 1938 में सेवासदन उपन्यास पर फिल्म बनाई जिसमें सुब्बालक्ष्मी ने मुख्य भूमिका निभाई थी। 1977 में मृणाल सेन ने प्रेमचंद की कहानी कफन पर आधारित ओका ऊरी कथा नाम से एक तेलुगू फिल्म बनाई जिसको सर्वश्रेष्ठ तेलुगू फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। 1963 में गोदान और 1966 में गबन उपन्यास पर लोकप्रिय फिल्में बनीं। 1980 में उनके उपन्यास पर बना टीवी धारावाहिक निर्मला भी बहुत लोकप्रिय हुआ था।

9.3.1 कृतित्व :-

हिन्दी कहानी के विकास के क्रम में प्रेमचंद का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है। सर्वप्रथम इन्हीं की कहानियों में सामाजिक परिवेश, उसकी कुप्रथा, असामानता, छुआछूत, शोषण की विभिषिका, कमजोर वर्ग और स्त्रियों का दमन आदि भावनाएँ उद्घाटित हुईं। उन्होंने आम आदमी के जीवन व उसकी परिस्थितियों को अत्यंत निकट से देखा। अछूतों की कठिनाईयों, समस्याओं तथा कथित उच्चवर्ग द्वारा दलितों पर कियो जाने वाले अत्याचार का खुलकर विरोध ही नहीं वर्णन भी किया।

प्रेमचंद की कहानियों के विषय में राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि "वेश्या, अछूत, किसान, मजदूर, जमींदार, सरकारी अफसर, अध्यापक, नेता, क्लर्क तथा समाज के प्रायः हर वर्ग पर प्रेमचंद ने कहानियाँ लिखी हैं और राष्ट्रीय चेतना के अंतर्गत उनकी कहानियों में विशेष उत्साह, आदर्शवाद और आवेश है। प्रेमचंद समस्या व हल दोनो एक साथ देते हैं। यही कहानी कला की विशेषता है।"

प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कहानी के पितामह माने जाते हैं। यों तो उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ 1901 से हो चुका था, पर उनकी पहली हिन्दी कहानी सरस्वती पत्रिका के दिसंबर अंक में 1915 में सौत नाम से प्रकाशित हुई और 1936 में अंतिम कहानी कफन नाम से। बीस वर्षों की इस अवधि में उनकी कहानियों के अनेक रंग देखने को मिलते हैं। उनसे पहले हिंदी

में काल्पनिक, एय्यारी और पौराणिक-धार्मिक रचनाएं ही की जाती थी। प्रेमचंद ने हिंदी में यथार्थवाद की शुरूआत की। भारतीय साहित्य का बहुत सा विमर्श जो बाद में प्रमुखता से उभरा चाहे वह दलित साहित्य हो या नारी साहित्य उसकी जड़ें कहीं गहरे प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई देते हैं। अपूर्ण उपन्यास असरारे मआबिद के बाद देशभक्ति से परिपूर्ण कथाओं का संग्रह सोजे-वतन उनकी दूसरी कृति थी, जो 1907 में प्रकाशित हुई। इस पर अँग्रेजी सरकार की रोक और चेतावनी के कारण उन्हें नाम बदलकर लिखना पड़ा। प्रेमचंद नाम से उनकी पहली कहानी बड़े घर की बेटी जमाना पत्रिका के दिसंबर 1910 के अंक में प्रकाशित हुई। मरणोपरांत उनकी कहानियाँ मानसरोवर के आठ खंडों में प्रकाशित हुई। कहानी सम्राट प्रेमचन्द का कहना था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। यह बात उनके साहित्य में उजागर हुई है। 1921 में उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर अपनी नौकरी छोड़ दी। कुछ महीने मर्यादा पत्रिका का संपादन भार संभाला, छः साल तक माधुरी नामक पत्रिका का संपादन किया, 1930 में बनारस से अपना मासिक पत्र हंस शुरू किया और 1932 के आरंभ में जागरण नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। उन्होंने लखनऊ में आयोजित (1936) अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उन्होंने मोहन दयाराम भवनानी की अजंता सिनेटोन कंपनी में कहानी-लेखक की नौकरी भी की। 1934 में प्रदर्शित मजदूर नामक फिल्म की कथा लिखी और कंट्रेक्ट की साल भर की अवधि पूरी किये बिना ही दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस भाग आये क्योंकि बंबई (आधुनिक मुंबई) का और उससे भी ज्यादा वहाँ की फिल्मी दुनिया का हवा-पानी उन्हें रास नहीं आया। प्रेमचंद ने करीब तीन सौ कहानियाँ, कई उपन्यास और सैकडों लेख लिखे। उन्होंने कुछ नाटक भी लिखे और कुछ अनुवाद कार्य भी किया। प्रेमचंद के कई साहित्यिक कृतियों का अंग्रेजी, रूसी, जर्मन सहित अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। गोदान उनकी कालजयी रचना है। कफन उनकी अंतिम कहानी मानी जाती है। तैंतीस वर्षो के रचनात्मक जीवन में वे साहित्य की ऐसी विरासत सौप गए जो गुणों की दृष्टि से अमूल्य है और आकार की दृष्टि से असीमित।

9.3.2 कृतियाँ :-

प्रेमचन्द की रचना-दृष्टि, विभिन्न साहित्य रूपों में, अभिव्यक्त हुई। वह बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, सम्पादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की किन्तु प्रमुख रूप से वह कथाकार हैं। उन्हें अपने जीवन काल में ही 'उपन्यास सम्राट' की पदवी मिल गई थी। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से अधिक कहानियाँ, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बाल-पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की। लेकिन जो यश और प्रतिष्ठा उन्हें उपन्यास और कहानियों से प्राप्त हुई, वह अन्य विधाओं से प्राप्त न हो सकी। यह स्थिति हिन्दी और उर्दू दोनों में समान रूप से दिखायी देती है। उन्होंने 'रंगभूमि' तक के सभी उपन्यास पहले उर्दू भाषा में लिखे थे और कायाकल्प से लेकर अपूर्ण उपन्यास 'मंगलसूत्र' तक सभी उपन्यास

मूलतः हिन्दी में लिखे। प्रेमचन्द कथा-साहित्य में उनके उपन्यासकार का आरम्भ पहले होता है। उनका पहला उर्दू उपन्यास (अपूर्ण) 'असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य' उर्दू साप्ताहिक ''आवाज-ए-खल्क'' में 8 अक्तूबर, 1903 से 1 फरवरी, 1905 तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। उनकी पहली उर्दू कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कानपुर से प्रकाशित होने वाली जमाना नामक पत्रिका में 1908 में छपी। उनके कुल 15 उपन्यास है, जिनमें 2 अपूर्ण है। बाद में इन्हें अनूदित या रूपान्तरित किया गया। प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद भी उनकी कहानियों के कई सम्पादित संस्करण निकले जिनमें कफन और शेष रचनाएँ 1936 में तथा नारी जीवन की कहानियाँ 1938 में बनारस से प्रकाशित हुए। इसके बाद प्रेमचंद की ऐतिहासिक कहानियाँ तथा प्रेमचंद की प्रेम संबंधी कहानियाँ भी काफी लोकप्रिय साबित हुई।

9.4 प्रेमचंद्र की कहानियों का रचना संसार

प्रेमचंद बचपन से ही खिलंदड़ स्वभाव के रहे। उनके इसी खिलाड़ी की छाप 'गुल्ली डंडा', 'शतरंज के खिलाड़ी', और 'बड़े भाई साहब' जैसी कहानियों में उजागर होती है। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को निश्चित परिप्रेक्ष्य और कलात्मक आधार दिया। उनकी कहानियाँ परिवेश को बुनती हैं। पात्र चुनती है। उसके संवाद उसी भाव-भूमि से लिए जाते हैं, जिस भाव-भूमि में घटना घट रही है। इसलिए पाठक कहानी के साथ अनुस्यूत हो जाता है। इसलिए प्रेमचंद यथार्थवादी कहानीकार हैं। लेकिन वे घटना को ज्यों-का-त्यों लिखने को कहानी नहीं मानते। यही वजह है कि उनकी कहानियों में आदर्श और यथार्थ का गंगा-यमुनी संगम है।

कथाकार के रूप में प्रेमचंद अपने जीवनकाल में ही किंवदंती बन गए थे। उन्होंने मुख्यताः ग्रामीण एवं नागरिक सामाजिक जीवन को कहानियों का विषय बनाया है। उनकी कथायात्रा में श्रमिक विकास के लक्षण स्पष्ट हैं, यह विकास वस्तु विचार, अनुभव तथा शिल्प सभी स्तरों पर अनुभव किया जा सकता है। उनका मानवतावाद अमूर्त भावात्मक नहीं, अपितु सुसंगत यथार्थवाद है।

प्रेमचंद की प्रत्येक कहानी मानव मन के अनेक दृश्यों चेतना के अनेक छोरों सामाजिक कुरीतियों तथा आर्थिक उत्पीड़न के विविध आयामों को अपनी संपूर्ण कलात्मकता के साथ अनावृत करती है। कफन, नमक का दारोगा, शतरंज के खिलाड़ी, वासना की कड़ियाँ, दुनिया का सबसे अनमोल रतन आदि सैकड़ों रचनाएँ ऐसी हैं, जो विचार और अनुभूति दोनों स्तरों पर पाठकों को आज भी आंदोलित करती हैं। वे एक कालजयी रचनाकार की मानवीय गरिमा के पक्ष में दी गई उद्घोषणाएँ हैं। समाज के दलित वर्गो, आर्थिक और सामाजिक यंत्रणा के शिकार मनुष्यों के अधिकारों के लिए जूझती मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ हमारे साहित्य की सबलतम निधि हैं। कहानी, साहित्य की सबलतम विधा है। वह एक ऐसा दर्पण है, जिसमें व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों, क्रियाविधियों, उसके सुख-दुःख के क्षणों की सजीव, हृदयग्राही तथा मार्मिक तस्वीरें देखी जा सकती हैं। इसके उन्नयन और विकास में विश्व के अनेक कथाकारों ने जो योगदान किया, वह भाषा-शैली, रूप-विधान, कला-सौष्ठव तथा तकनीक की दृष्टि से अत्यंत

महत्त्वपूर्ण है। यह हिंदी कहानी की उपलब्धि है कि इसे अपने विकास के आदिकाल में मुंशी प्रेमचंद जैसे मानव मन के कुशल चितेरे मिले, जिनके कहानी साहित्य ने हिंदी-उर्दू में एक नए युग का सूत्रपात किया।

प्रेमचंद की कहानियों का फलक व्यापक है। हिंदी के प्रख्यात समीक्षक डॉ.गौतम सचदेव ने मुंशी प्रेमचंद की कहानियों का मूल्यांकन करते हुए कहा-विचार तत्व उनकी कहानियों का निर्देशक है। लाहौर के मासिक पत्र 'नौरंगे खयाल' के संपादक के यह पूछने पर कि आप कैसे लिखते हैं? प्रेमचंद जी ने उत्तर दिया, 'मेरी कहानियां प्रायः किसी न किसी प्रेरणा या अनुभव पर आधारित होती हैं। इसमें मैं ड्रामाई रंग पैदा करने की कोशिश करता हूँ। केवल घटना वर्णन के लिए या मनोरंजन घटना को लेकर मैं कहानियां नहीं लिखता। मैं कहानी में किसी दार्शनिक या भावनात्मक लक्ष्य को दिखाना चाहता हूं। जब तक इस प्रकार का कोई आधार नहीं मिलता, मेरी कलम नहीं उठती।' प्रेमचंद का उक्त वक्तव्य आज भी प्रासंगिक है। शिल्पगत विशेषताओं की दृष्टि से भी प्रेमचंद की कहानियां अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। अपने समकालीन कथा साहित्य और परवर्ती पीढ़ी को उनकी कहानियों ने यथेष्ट रूप से प्रभावित किया है।

9.5 प्रेमचंद के साहित्य की विशेषताएँ

9.5.1 कथ्य की दृष्टि से :-

प्रेमचंद हिंदी के युग प्रवर्तक रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं में तत्कालीन इतिहास बोलता है। वे सर्वप्रथम उपन्यासकार थे, जिन्होंने उपन्यास साहित्य को तिलस्मी और ऐय्यारी से बाहर निकाल कर उसे वास्तविक भूमि पर ला खड़ा किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में जन-साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। उनकी कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। प्रेमचंद की रचनाओं को देश में ही नहीं विदेशों में भी आदर प्राप्त हैं। प्रेमचंद और उनकी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय महत्व है। आज उन पर और उनके साहित्य पर विश्व के उस विशाल जन समूह को गर्व है जो साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और सामंतवाद के साथ संघर्ष में जुटा हुआ है। प्रेमचंद ने अपने पात्रों का चुनाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से किया है, किंतु उनकी दृष्टि समाज से उपेक्षित वर्ग की ओर अधिक रही है। प्रेमचंद जी ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपनाया है। उनके पात्र प्रायः वर्ग के प्रतिनिधि रूप में सामने आते हैं। घटनाओं के विकास के साथ-साथ उनकी रचनाओं में पात्रों के चरित्र का भी विकास होता चलता है। उनके कथोपकथन मनोवैज्ञानिक होते हैं। प्रेमचंद जी एक सच्चे समाज सुधारक और क्रांतिकारी लेखक थे। उन्होंने अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर दहेज, बेमेल विवाह आदि का सबल विरोध किया है। नारी के प्रति उनके मन में स्वाभाविक श्रद्धा थी। समाज में उपेक्षिता, अपमानिता और पतिता स्त्रियों के प्रति उनका हृदय सहानुभूति से परिपूर्ण रहा है।

9.5.2 भाषा की दृष्टि से :-

प्रेमचंद की भाषा सरल और सजीव और व्यावहारिक है। उसे साधारण पढ़े-लिखे लोग भी समझ लेते हैं। उसमें आवश्यकतानुसार अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि के शब्दों का भी प्रयोग है। प्रेमचंद की भाषा भावों और विचारों के अनुकूल है। गंभीर भावों को व्यक्त करने में गंभीर भाषा और सरल भावों को व्यक्त करने में सरल भाषा को अपनाया गया है। इस कारण भाषा में स्वाभाविक उतार-चढ़ाव आ गया है। प्रेमचंद जी की भाषा पात्रों के अनुकूल है। उनके हिंदू पात्र हिंदी और मुस्लिम पात्र उर्दू बोलते हैं। इसी प्रकार ग्रामीण पात्रों की भाषा ग्रामीण है। और शिक्षितों की भाषा शुद्ध और परिष्कृत भाषा है। डा. नगेन्द्र लिखते हैं- 'उनके उपन्यासों की भाषा की खूबी यह है कि शब्दों के चुनाव एवं वाक्य-योजना की दृष्टि से उसे 'सरल' एवं 'बोलचाल की भाषा' कहा जाता है। पर भाषा की इस सरलता को निर्जीवता, एकरसता एवं अकाव्यात्मकता का पर्याय नहीं समझा जाना चाहिए। 'भाषा के सटीक, सार्थक एवं व्यंजनापूर्ण प्रयोग में वे अपने समकालीन ही नहीं, बाद के कहानीकारों को भी पीछे छोड़ जाते हैं।'

9.6 बड़े भाई साहब कहानी की विशेषता

प्रस्तुत पाठ 'बड़े भाई साहब' कहानी बालपन से पूर्ण चिंतन की ओर ले जाने की यात्रा है। बड़े भाई साहब द्वारा जीवन के अनुभव की बात करना जीवन के यथार्थपक्ष व उसके आदर्श का संकेत है। राष्ट्रीय चेतना में प्रेमचंद गांधी जी से प्रभावित थे। इनकी कहानियों में आदर्शवाद के बदलते रूप स्पष्ट दीख पड़ते हैं जो समसामयिक युगबोध को स्पष्ट करते हैं। जहाँ बड़े घर की बेटी, पंचपरमेश्वर, नमक का दरोगा, उपदेश, परीक्षा, पूस की रात जैसी कहानियों में कर्त्तव्य, त्याग, प्रेम, न्याय, मित्रता, देश सेवा के भाव की प्रतिष्ठा हुई है वहीं 'बड़े भाई साहब', 'बूढ़ी काकी', जैसी कहानियों में उनका आदर्शवाद यथार्थ में परिवर्तित होता नजर आता है।

हिन्दी कहानी के विकास में मुंशी प्रेमचंद का महत्वपूर्ण योगदान है। डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है- ''हिन्दी कहानी अपने विकास की आरंभिक अवस्थाओं को पारकर वहाँ पहुँची जहाँ से हमें इसके श्रेष्ठ रूप के दर्शन होने लगते हैं। बड़े भाई साहब कहानी आदशोन्मुख यथार्थवाद का प्रतीक रूप है।''

यह कहानी इस बात का संदेश देती है कि कहीं न कहीं व्यक्ति को अपनी असफलता से निराश न होकर मन के अंर्ततम में परंपरागत आदर्शपूर्ण विचारों का परित्याग नहीं करना चाहिये। बड़े भाई साहब कहानी में जिस परंपरागत विचार की प्रस्तावना की गई है उसमें मानसिक खीझ मिटाने के लिये नियमों और निर्धारण का पूरा ध्यान रखा गया है। समाज के इसी प्रकार के हीन भावों-विचारों के यथार्थ को प्रेमचंद ने 'बड़े भाई साहब' कहानी में अभिव्यक्त किया है। प्रेमचंद की कहानियों में समस्या का उद्घाटन तो है किन्तु अत्याचार के विरोध का स्वर नहीं है। बड़े भाई साहब के बार-बार असफल होने के बाद भी छोटे को नसीहत दे देकर परेशान करने की प्रक्रिया छोटा भाई नहीं कर सका। यह कहानी आदर्शपूर्ण मानसिक यथार्थ का चिंतन मात्र बनकर रह गई।

बड़े भाई साहब कहानी महज दो किरदारों के बीच घूमती हुई कहानी है। महज दो पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने मानव मात्र की विडम्बनाओं को सहजता के साथ प्रस्तुत किया है। यह कहानी कई मायनों में प्रासंगिक होती जाती है। समय-संदर्भ की शिला पर यह कहानी अपनी उपयोगिता का भान करा ही देती है। यदि इस कहानी को अपने जीवनचर्या को मद्देनजर रखते हुए पढ़ें तो हमें मानव की उपदेशात्मक प्रवृत्ति का चित्र दिखाई देने लगता है। यदि कोई उम्र में बड़ा है तो उसकी क्या मजाल कि वो किसी छोटे से कोई सलाह ले, उल्टे वह तथाकथित उम्रदराज अपनी नाकामी के अनुभव को छोटों के उपर थोपेगा।

यदि इस कहानी का वाचन देश की व्यवस्था को ध्यान में रख कर किया जाय तो प्रतिफल प्राप्त होगा कि व्यवस्था स्वयं को देश का अभिभावक घोषित करके जनता पर मूल्यहीन योजनाओं को थोपती है। जनता रूपी ''छोटे भाई'' कितने ही होनहार क्यों न हों फिर भी जनता के प्रस्ताव को अनुभवहीनता का हवाला देते हुए ''बड़े भाई'' रूपी व्यवस्था खारिज कर देती है।

यदि ''बड़े भाई साहब'' का अध्ययन तत्कालीन परिस्थिति को ध्यान में रख कर पढ़ा जाय तो ज्ञात होगा कि कहानी के रचना का काल अंग्रेजी शासन काल का है। उस समय अंग्रेजी व्यवस्था भारतीय जनमानस के बीच खुद को भारत का ''बड़ा भाई'' घोषित कर देश में मनमानी कर रही थी। प्रेमचंद ने इस कहानी में तत्कालीन भारत की व्यथा को अभिव्यक्त किया है। कहानी सम्राट प्रेमचंद अपने कुशलता से भारत की जनता को संदेश देते हैं कि अंग्रेज रूपी ''बड़े भाई'' हमारे ऊपर अपनी नाकामी का अनुभव थोपते रहेंगे लेकिन हम भारतीयों को ''छोटा भाई'' बनकर अपने कौशल का परिचय देना होगा।

मात्र दो पात्रों के माध्यम से पूरे हिन्दुस्तान का चित्र खींचने का कौशल सिर्फ प्रेमचंद जैसे निपुण रचनाकार में ही हो सकता है। एक मानव मात्र की सहज सोच को बड़ी बारीकी से शब्दों द्वारा चित्रित करने वाले अकेले कलाकार हैं मुंशी प्रेमचंद। ''बड़े भाई साहब'' की सोच आम आदमी की सोच है। हर हारा हुआ इंसान अपने अनुभव की शेखी बघारता रहता है। और जो वास्तव में विजेता रहता है वह तो सभी के अनुभव से कुछ न कुछ सीखता ही है।

9.7 प्रेमचंद : मूल्यांकन

वास्तव में प्रेमचंद का जीवन उनके साहित्य के समान ही रोचक, प्रेरणादायक एवं घटनापूर्ण होने के कारण लोगों को परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए एक श्रेष्ठ मानव बनने की मजबूत आधारभूत सामग्री प्रदान करता है। प्रेमचंद का जन्म चूंकि तीन बहनों के बाद हुआ था, इस कारण परिवार में वे विशेष दुलारे थे। प्रेमचंद जन-साहित्य निर्माता थे। उनकी रचनाओं में हजारों साल से मर्दित, शोषित और उपेक्षित जनता, यहां तक कि घरेलू जानवरों-कुत्ता, बैल आदि तक को प्रतिनिधित्व मिला। उनकी भावनाओं के साथ जन सामान्य की जीवन दृष्टि, उसकी आशा-आकांक्षा व समस्याओं का मार्मिक चित्रण और साथ ही उनके व्यावहारिक समाधान का जैसा उद्घाटन प्रेमचंद द्वारा किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अपने समय

के भारत का जीवंत चित्र अपनी लेखनी के सहारे साहित्य जगत, के सामने रखकर किसानों और मजदूरों की कारूणिक दशा के निदर्शन के साथ औद्योगिकीकरण से उत्पन्न संकट, सांप्रदायिक वैमनस्य और अनेक कुप्रथाओं- जैसे-दहेज प्रथा, छुआछूत, वेश्यावृत्ति, बाल विवाह, विधवाओं की समस्या, परिवारों के विघटन आदि से जुड़ी घरेलू समस्याओं का, जो व्यावहारिक समाधान भारतीय समाज के समक्ष रखा है, वह अपनाए जाने योग्य है। उनकी समतामूलक मानवतावादी दृष्टि प्रेम की संजीवनी से पोषित और त्याग, करूणा, उदारता, नैतिकता व भाईचारे की भावना से और भी मजबूत हुई है। ये प्रवृत्तियाँ और मूल्य किसी भी राष्ट्र के नागरिक के लिए सदैव अनुकरणीय रहेंगे। इनसे देश और समाज की एकता भी अखण्डित रखी जा सकती है। प्रेमचंद युगानुरूप विकसित सांस्कृतिक पुनरूत्थान की चेतना, जीवनादर्शों और मानवीय संवेदना के कुशल संवाहक थे और यही विशेषता उन्हें रामानंद, कबीर और गोस्वामी तुलसीदास जैसे लोक नायकों से जोड़ती है।

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. प्रेमचंद का जन्म.............वर्ष में हुआ था।
2. प्रेमचंद को उपन्यास ....कहा जाता है।
3. प्रेमचंद के बचपन का नाम.............था।
4. प्रेमचंद उर्दू में.........नाम से लिखते थे।
5. प्रेमचंद की कहानी संग्रह.............अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था।
6. प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी.............थी।
7. प्रेमचंद की अंतिम कहानी...........थी।
8. ....प्रेमचंद का अंतिम उपन्यास है।
9. हंस पत्रिका का संपादक प्रेमचंद ने..................वर्ष से प्रारंभ किया था।
10. जमाना संपादक दयानारायण निगम ने..................नाम से लिखने की सलाह दी।

9.8 सारांश

प्रेमचंद साहित्य लेखन को उद्देश्यपरक मानते हैं और इसी भाव को बड़े भाई साहब कहानी में उन्होंने जय-पराजय (पास-फेल) के बीच संघर्षपूर्ण विचारों में परंपरागत आदर्श की जीत को मुख्य उद्देश्य माना है। बड़े भाई साहब का बार-बार एक ही कक्षा में फेल होकर भी छोटे भाई को पढ़ाई के प्रति सतर्क नसीहत देना परंपरा का आदर्शवादी यथार्थ स्वरूप है। बड़प्पन को जबरन आदर्श की तरह ओढ़े भाई साहब अंततः छोटे भाई को नसीहत देते-देते स्वयं ‘कनकौआ’(पतंग) लूटकर भागते हैं- यह जबरदस्ती के आदर्श में छिपी मानसिकता का प्रतीक है। इसमें पात्रों का बड़ा ही सूक्ष्म, स्पष्ट मनोवैज्ञानिक चिंतन प्रस्तुत हुआ है। पढ़ाई के लिए नित्य टाइम-टेबल बनाना फिर खेलने के समय उसे ध्वस्त कर देना। बावजूद कक्षा में छोटे भाई का

अव्वल आना तथा बड़े भाई साहब का बार-बार एक ही कक्षा में फेल होकर भी छोटे भाई को पढ़ाई के लिए डाँटना स्वयं उनके अपराधबोध या हीन भावना को उजागर करता है।

9.9 शब्दावली

- अकाव्यात्मकता - जिस भाषा की प्रयुक्ति काव्यात्मक न हो।
- अपराधबोध - अपनी गलतियों से उत्पन्न हुई हीनता ग्रंथि
- औद्योगिकीकरण - कल-कारखानों के वर्चस्व की संस्कृति
- सांप्रदायिकता - दूसरे धर्म के प्रति कट्टरता की भावना

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1880
2. सम्राट
3. धनपतराय
4. नवाबराय
5. सोजे-वतन
6. सौत
7. कफन
8. गोदान
9. 1930
10. प्रेमचंद

9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, नामवर, कहानी नयी कहानी, लोक भारती प्रकाशन।
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा
3. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पब्लिकेशन।

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रेमचंद को कहानी शिल्प की विवेचना करें।
2. प्रेमचंद की भाषा शिल्प पर प्रकाश डालें।
3. ‘‘बड़े भाई साहब‘’ कहानी का उद्देश्य लिखें।

इकाई 10 - बड़े भाई साहब : पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मूलपाठ
10.4 आलोचनात्मक संदर्भ
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में कथा सम्राट प्रेमचंद की कहानी 'बड़े भाई साहब' के मूलपाठ का अध्ययन किया जा रहा है। इस कहानी में हार-जीत का द्वन्द्व एवं छोटे की सफलता से उपजी अपराधबोध भावना का मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन है। ईर्ष्या का छिपा हुआ भाव या दबी कुचली मानसिकता के प्रतीक बड़े भाई साहब संभवतः हिंदी की प्रथम अनूठी कहानी है जिसमें हारे हुए को हरिनाम नहीं दूसरों को नसीहत देने में किंचित शांति मिलती है। यह प्रेमचंद की सफल मनोवैज्ञानिक रचना है।

10.2 उद्देश्य

एम.ए.एच.एल 201की यह दसवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- प्रेमचंद की कहानी ''बड़े भाई साहब'' का मूलपाठ से परिचित होंगे।
- ''बड़े भाई साहब'' कहानी की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- मूलपाठ के माध्यम से प्रेमचंद के कहानी कौशल से परिचित हो सकेंगे।
- प्रेमचंद की कहानी में आये पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।
- प्रेमचंद संबंधी विभिन्न आलोचकों के मतों से परिचित हो सकेंगे।

10.3 मूलपाठ

1. मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे, लेकिन तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था जब मैंने शुरू किया; लेकिन तालीम जैसे महत्व के मामले में वह जल्दीबाजी से काम लेना पसंद न करते थे। इस भवन की बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पाएदार बने।

मैं छोटा था, वह बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल कि, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को कानून समझूँ।

वह स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार-बार सुन्दर अक्षर से नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता, न कोई सामंजस्य! मसलन एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी-स्पेशल, अमीना, भाइयों-भाइयों, दर-असल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घंटे तक इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूँ; लेकिन असफल रहा और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवीं जमात में थे, मैं पाँचवीं में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुंह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिल्कुल न लगता था। एक घंटा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता और कभी कंकरियाँ उछालता, कभी कागज की तितलियाँ उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया तो पूछना ही क्या कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे है, कभी फाटक पर वार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनंद उठा रहे हैं। लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का रौद्र रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता- 'कहाँ थे?' हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में पूछा जाता था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मुंह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि रोष से मिले हुए शब्दों में मेरा सत्कार करें।

'इस तरह अंग्रेजी पढ़ोगे, तो जिन्दगी-भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ न आएगा। अँगरेजी पढ़ना कोई हंसी-खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ ले, नहीं, ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा सभी अंगरेजी कि विद्वान हो जाते। यहाँ रात-दिन आंखे फोड़नी पड़ती है और खून जलाना पड़ता है, जब कही यह विद्या आती है। और आती क्या है, हाँ, कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान भी शुद्ध अंगरेजी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूँ, तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नही लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूँ, तुम अपनी आंखो देखते हो, अगर नही देखते, जो

यह तुम्हारी आंखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है, रोज ही क्रिकेट और हाकी मैच होते हैं। मैं पास नही फटकता। हमेशा पढ़ता रहा हूं, उस पर भी एक-एक दरजे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूं फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कुद में वक्त गंवाकर पास हो जाओगे? मुझे तो दो-ही-तीन साल लगते हैं, तुम उम्र-भर इसी दरजे में पड़ेसड़ते रहोगे। अगर तुम्हें इस तरह उम्र गंवानी है, तो बेहतर है, घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डंडा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रूपये क्यों बरबाद करते हो?'

मैं यह लताड़ सुनकर आंसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे? भाई साहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत छूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने कि शक्ति मैं अपने में न पाता था और उस निराशा में जरा देर के लिए मैं सोचने लगता-क्यों न घर चला जाऊँ। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिन्दगी खराब करूं। मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था; लेकिन उतनी मेहनत से मुझे तो चक्कर आ जाता था। लेकिन घंटे-दो घंटे बाद निराशा के बादल फट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढूंगा। चटपट एक टाइम-टेबिल बना डालता। बिना पहले से नक्शा बनाए, बिना कोई स्कीम तैयार किए काम कैसे शुरू करूं? टाइम-टेबिल में, खेल-कूद की मद बिल्कुल उड़ जाती। प्रातःकाल उठना, छः बजे मुंह-हाथ धो, नाश्ता कर पढ़ने बैठ जाना। छः से आठ तक अंग्रेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढ़े नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढे तीन बजे स्कूल से वापस होकर आधा घंण्टा आराम, चार से पांच तक भूगोल, पांच से छः तक ग्रामर, आघा घंटा होस्टल के सामने टहलना, साढे छः से सात तक अंग्रेजी कम्पोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेबिल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हलके-हलके झोंके, फुटबाल की उछल-कूद, कबड्डी के वह दांव-घात, वाली-बाल की वह तेजी और फुरती मुझे अज्ञात और अनिर्वाय रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जान-लेवा टाइम- टेबिल, वह आंखफोड़ पुस्तकें किसी कि याद न रहती, और फिर भाई साहब को नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साये से भागता, उनकी आंखो से दूर रहने कि चेष्टा करता। कमरे में इस तरह दबे पांव आता कि उन्हें खबर न हो। उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर नंगी तलवार-सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बंधन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियां खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता।

2. सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गए, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथो

लूँ-आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गई? मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दरजे में अव्वल भी हूँ। लेकिन वह इतने दुःखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हाँ, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्माभिमान भी बढ़ा, भाई साहब का वहरोब मुझ पर न रहा। आजादी से खेल-कूद में शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फजीहत की, तो साफ कह दूँगा- आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दरजे में अव्वल आ गया। जबाव से यह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतंक अब मुझ पर नहीं है। भाई साहब ने इसे भाँप लिया-उनकी सहस बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली-डंडे कि भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साइब ने मानों तलवार खींच ली और मुझ पर टूट पड़े-देखता हूँ, इस साल पास हो गए और दरजे में अव्वल आ गए, तो तुम्हें दिमाग हो गया है; मगर भाईजान, घमंड तो बड़े-बड़े का नहीं रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है, इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया? या यों ही पढ़ गए? महज इम्तहान पास कर लेना कोई चीज नहीं, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भूमंडल का स्वामी था। ऐसे राजों को चक्रवर्ती कहते हैं। आजकल अंगरेजों के राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है, पर इन्हें चक्रवर्ती नहीं कह सकते। संसार में अनेकों राष्ट्र अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते। बिलकुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था। संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे; मगर उसका अंत क्या हुआ, घमंड ने उसका नाम-निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चिल्लू पानी देनेवाला भी न बचा। आदमी जो कुकर्म चाहे करेंय पर अभिमान न करे, इतराए नहीं। अभिमान किया और दीन-दुनिया से गया।

शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अनुमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढ़कर सच्चा भक्त कोई है ही नहीं। अन्त में यह हुआ कि स्वर्ग से नरक में ढकेल दिया गया। शाहेम ने भी एक बार अहंकार किया था। भीख मांग-मांगकर मर गया। तुमने तो अभी केवल एक दरजा पास किया है और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया, तब तो तुम आगे बढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नहीं पास हुए, अन्धे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं। कभी-कभी गुल्ली-डंडे में भी अंधा चोट निशाना पड़ जाता है। उससे कोई सफल खिलाड़ी नहीं हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है, जिसका कोई निशान खाली न जाए।

मेरे फेल होने पर न जाओ। मेरे दरजे में आओगे, तो दाँतो पसीना आयगा। जब अलजबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा! बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ-आठ हेनरी को गुजरे हैं कौन-सा कांड किस हेनरी के समय हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवां लिखा और सब नम्बर गायब! सफाचट। सिर्फ भी न मिलेगा, सिफर भी! हो किस ख्याल

में! दरजनों तो जेम्स हुए हैं, दरजनो विलियम, कोड़ियों चार्ल्स दिमाग चक्कर खाने लगता है। आंधी रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, तेयम, चहारम, पंचम लगाते चले गए। मुझसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता। और जामेट्री तो बस खुदा की पनाह! अ ब ज की जगह अ ज ब लिख दिया और सारे नम्बर कट गए। कोई इन निर्दयी मुमतहिनों से नहीं पूछता कि आखिर अ ब ज और अ ज ब में क्या फर्क है और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का खून करते हो दाल-भात-रोटी खायी या भात-दाल- रोटी खायी, इसमें क्या रखा है; मगर इन परीक्षकों को क्या परवाह! वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तक में लिखा है। चाहते हैं कि लडके अक्षर-अक्षर रट डालें। और इसी रटंत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है और आखिर इन बे-सिर-पैर की बातों के पढ़ने से क्या फायदा?

इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन? दुगना नहीं, चौगुना हो जाए, या आधा ही रहे, मेरी बला से, लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करनी पड़ेगी। कह दिया-'समय की पाबंदी' पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ में लिये, उसके नाम को रोइए।

कौन नहीं जानता कि समय की पाबन्दी बहुत अच्छी बात है। इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरों का उस पर स्नेह होने लगता है और उसके करोबार में उन्नति होती है; जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें? जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्ने में लिखने की जरूरत? मैं तो इसे हिमाकत समझता हूँ। यह तो समय की किफायत नहीं, बल्कि उसका दुरूपयोग है कि व्यर्थ में किसी बात को ठूंस दिया। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले। मगर नहीं, आपको चार पन्ने रंगने पडेंगे, चाहे जैसे लिखिए और पन्ने भी पूरे फुलस्केप आकार के। यह छात्रों पर अत्याचार नहीं तो और क्या है? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है, संक्षेप में लिखो। समय की पाबन्दी पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नो से कम न हो। ठीक! संक्षेप में चार पन्ने हुए, नहीं शायद सौ-दो सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौडिए और धीरे-धीरे भी। है उल्टी बात या नहीं? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है, लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज भी नहीं। उस पर दावा है कि हम अध्यापक है। मेरे दरजे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे में अव्वल आ गए हो, वो जमीन पर पांव नहीं रखते इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन तुमसे बड़ा हूँ, संसार का मुझे तुमसे ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बांधिए नहीं पछताएँगे।

स्कूल का समय निकट था, नहीं इश्वर जाने, यह उपदेश-माला कब समाप्त होती। भोजन आज मुझे निस्स्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिए जाएं। भाई साहब ने अपने दरजे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खींचा था; उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा, यही ताज्जुब है; लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों में मेरी अरुचि ज्यों-कि-त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई

अवसर हाथ से न जाने देता। पढ़ता भी था, मगर बहुत कम। बस, इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाए और दरजे में जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था, वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरों का-सा जीवन कटने लगा।

3. फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मै फिर पास हुआ और भाई साहब फिर फेल हो गए। मैंने बहुत मेहनत न की पर न जाने, कैसे दरजे में अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणांतक परिश्रम किया था। कोर्स का एक-एक शब्द चाट गए थे; दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उभर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा कांतिहीन हो गई थी, मगर बेचारे फेल हो गए। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया, तो वह रो पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने वाली खुशी आधी हो गई। मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई साहब को इतना दुःख न होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले?

मेरे और भाई साहब के बीच में अब केवल एक दरजे का अन्तर और रह गया। मेरे मन में एक कुटिल भावना उदय हुई कि कहीं भाई साहब एक साल और फेल हो जाएँ, तो मैं उनके बराबर हो जाऊं, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बलपूर्वक निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डांटते हैं। मुझे उस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनादन पास होता जाता हूँ और इतने अच्छे नम्बरों से।

अबकी भाई साहब बहुत-कुछ नर्म पड़ गए थे। कई बार मुझे डांटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डांटने का अधिकार उन्हे नही रहा; या रहा तो बहुत कम। मेरी स्वच्छंदता भी बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास ही हो जाऊंगा, पढ़ूं या न पढ़ूं मेरी तकदीर बलवान् है, इसलिए भाई साहब के डर से जो थोडा-बहुत बढ़ लिया करता था, वह भी बंद हुआ। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी ही की भेंट होता था, फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। मांझा देना, कन्ने बांधना, पतंग टूर्नामेंट की तैयारियां आदि समस्याएँ अब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। भाई साहब को यह संदेह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरों से कम हो गया है।

एक दिन संध्या समय होस्टल से दूर मैं एक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौड़ा जा रहा था। आंखें आसमान की ओर थीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मंद गति से झूमता पतंग की ओर चला जा रहा था, मानों कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नए संस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लग्गे और झड़दार बांस लिये उनका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतंग के साथ ही आकाश में उड़ रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटरकारे है, न ट्राम, न गाड़ियाँ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होंने वही मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्रभाव से बोले-इन बाजारी लौंडो के साथ धेले के कनकौए के लिए

दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमात में नहीं हो, बल्कि आठवीं जमात में आ गए हो और मुझसे केवल एक दरजा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ तो अपनी पोजीशन का ख्याल करना चाहिए। एक जमाना था कि कि लोग आठवां दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडलचियों को जानता हूँ, जो आज अव्वल दरजे के डिप्टी मजिस्ट्रेट या सुपरिटेंडेंट है। कितने ही आठवी जमाअत वाले हमारे लीडर और समाचार-पत्रों के सम्पादक हैं। बड़े-बड़े विद्वान उनकी मातहती में काम करते हैं और तुम उसी आठवें दरजे में आकर बाजारी लौंडों के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअकली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं; लेकिन वह जेहन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले? तुम अपने दिन में समझते होगे, मैं भाई साहब से महज एक दर्जा नीचे हूं और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नही है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूं और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ- और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्संदेह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे और शायद एक साल बाद तुम मुझसे आगे निकल जाओ-लेकिन मुझमें और जो पांच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूंगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजुरबा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम. ए., डी. फिल. और डी. लिट. ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती है। हमारी अम्मा ने कोई दरजा पास नहीं किया, और दादा भी शायद पांचवी जमाअत के आगे नहीं गए, लेकिन हम दोनों चाहें सारी दुनिया की विधा पढ़ लें, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता है, बल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज्यादा तजुरबा है और रहेगा। अमेरिका में किस तरह कि राज्य-व्यवस्था है और आठवें हेनरी ने कितने विवाह किये और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह बातें चाहे उन्हे न मालूम हों, लेकिन हजारों ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान उन्हें हमसे और तुमसे ज्यादा है।

दैव न करें, आज मैं बीमार हो आऊं, तो तुम्हारे हाथ-पांव फूल जाएंगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह पर दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबराएं, न बदहवास हों। पहले खुद मरज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमें सफल न हुए, तो किसी डाक्टर को बुलायेगें। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है। हम-तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने-भर का खर्च महीने-भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस-बाईस तक खर्च कर डालते हैं और पैसे-पैसे को मोहताज हो जाते हैं। नाश्ता बंद हो जाता है, धोबी और नाई से मुंह चुराने लगते हैं; लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं, उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है, जिसमे सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेडमास्टर साहब ही को देखो। एम.ए. हैं कि नहीं, और यहाँ के एम.ए. नहीं, ऑक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते हैं, लेकिन उनके घर इंतजाम कौन करता है? उनकी बूढ़ी मां। हेडमास्टर साहब की डिग्री यहाँ बेकार हो गई। पहले खुद घर का

इंतजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जब से उनकी माताजी ने प्रबंध अपने हाथ मे ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाईजान, यह जरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गए हो और अब स्वतंत्र हो। मेरे देखते तुम बेराह नहीं चल पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे, तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। मैं जानता हूँ, तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही हैं।

मैं उनकी इस नई युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे तम में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आंखों से कहा- हरगिज नहीं। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, वह बिलकुल सच है और आपको कहने का अधिकार है।

भाई साहब ने मुझे गले लगा लिया और बाल-कनकौए उड़ान को मना नहीं करता। मेरा जी भी ललचाता है, लेकिन क्या करूँ, खुद बेराह चलूं तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ? यह कर्त्तव्य भी तो मेरे सिर पर है।

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लंबे हैं ही, उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

10.4 आलोचनात्मक संदर्भ

प्रेमचन्द साहित्य को सोद्देश्य कर्म मानते हैं। इसी क्रम में हम यह जानते हुए चलें कि 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन में अध्यक्षीय वक्तव्य में उन्होंने कहा था- साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का समान जुटाना नहीं है-उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देशभक्ति व राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जो हममें उच्च चिंतन, स्वाधीनता के साथ गति, संघर्ष और तड़प पैदा करे, सुलाए नहीं।

प्रेमचंद के उपर्युक्त कथन से उनकी साहित्यिक प्रतिबद्धता का स्पष्ट पता चलता है। प्रेमचंद साहित्य लेखन को उद्देश्य परक मानते हैं। और इसी मान को बड़े भाई साहब कहानी में उन्होंने जय-पराजय (पास-फेल) के बीच संघर्षपूर्ण विचारों में परंपरागत आदर्श भी जीत को मुख्य उद्देश्य माना है। कहानी को कथानक से लेकर उद्देश्य तक के सभी स्तर पर मानव मन के करीब लाकर प्रेमचन्द ने जिस परंपरा का सूत्रपात किया वह आज भी कथा-साहित्य की मुख्य धारा बनी हुई है। 'बड़े भाई साहब' कहानी में नियति मे विश्वास का गहरा प्रभाव है। अपनी असफलता को दबाने या भूलने के लिए दूसरों को आदर्श की घुटी पिलाने की प्रवृत्ति इस कहानी का सशक्त मनोवैज्ञानिक पक्ष है। यही कारण है कि अंत में पतंगबाजी का घोर विरोध करने वाले भाई साहब स्वयं कटी हुई पतंग की डोर पकड़कर भागने में कामयाब रहते हैं।

हार-जीत व पास-फेल में द्वन्द्व में फँसे बड़े भाई साहब महीन वहीं अपने दबे कुचले असफल होने वाले भाव को व्यक्त करते रहते हैं। छोटे भाई को डाँटते समय पिता-दादा का उदाहरण देना परंपरा का द्योतक है। इस कहानी में परंपरा को निर्वहन पर भी अप्रत्यक्ष रूप से जोर दिया गया है। असफलता के बावजूद बड़े भाई साहब स्वयं से लगभग अपमानित होने पर छोटे भाई को आदर्श की बात समझाते है, जो इस कहानी की यथार्थता ही नहीं अपितु यह उद्घाटित करता है कि असफलता से अधिकारों का हनन नहीं होता। लेखक यह स्पष्ट करने में सर्वथा सफल रहा है कि स्वयं के दोष को छिपाने में दूसरों को उपदेश देना एक मानसिक कमजोरी का प्रतीक है। मन को भीतर से भी नहीं दबाया जा सकता। यह बात प्रस्तुत कहानी बड़े भाई साहब में उस समय प्रकट होती है जब वह डाँटने-मारने की जगह स्वयं पतंग लूटकर भागते हैं। यह मानसिक दुर्बलता पर परिस्थिति जन्य अधिकार की स्थापना है। यही प्रेमचन्द की कथा-शैली की विशेषता है कहानी पढ़ते हुए कहीं नहीं लगता कि यह कहानी है। बल्कि प्रतीत होता है मानों कोई संवाद या रिर्पोट पढ़ रहे हैं। कुल मिलाकर बड़े भाई साहब कहानी मनुष्य की स्वयं की असफलता पर अपमान बोध से ग्रसित मानसिकता का सूक्ष्म विवेचन है। अपमानित और घायल मानसिकता झुकने को तैयार नहीं है बड़प्पन का बोध सीखने-समझने को तैयार नहीं है, जो इस कहानी पर मुख्य स्वर है अंततः उपदेशक ही झुकता है और कथनी-करनी के अंतर को दूर कर देता है-पतंग लूटकर।

अभ्यास प्रश्न

सही/गलत का चुनाव कीजिए।

1. बड़े भाई साहब कहानी में दो मुख्य पात्र हैं।
2. बड़े भाई साहब मनोवैज्ञानिक कहानी है।
3. बड़े भाई साहब प्रेमचंद की कमजोर कहानी है।
4. बड़े भाई साहब छोटे भाई से पाँच वर्ष बड़े थे।
5. बड़े भाई साहब कहानी मैं शैली में लिखी गई कहानी है।

10.5 सारांश

अपने बड़े भाई साहब कहानी के पाठ का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आपके सामने कहानी के माध्यम से उठाई गई या कही गई बातों का एक सम्पूर्ण चित्र उभर आया होगा। प्रेमचन्द ने तत्कालीन समय में भारतीय समाज की ज्वलंत समस्याओं के साथ-साथ मानवीय सूक्ष्म मानसिकता को उद्घाटित किया है। बड़े भाई साहब बहुत मेहनत से अध्ययन करते हैं किन्तु परीक्षा का परिणाम शून्य आता है और वहीं छोटे भाई साहब खेलते कूदते हुए भी उत्तम परिणामों से पास होते रहते हैं। यह पात्रों की स्थिति कथानक की विडम्बना है। बड़े भाई साहब मुख्य रूप से मानसिकता के चतुर्दिक घूमती हुई कहानी है। बार-बार फेल होने की हीन-भावना से ग्रसित बड़े भाई साहब पर फेल होने का अपराध बोध इतना बोझिल हो

जाता है कि अपने भाव को दबाकर छोटे भाई को नसीहत की फेहरिस्त थमा देते हैं। खेलना-कूदना तो दूर खेलने वाले बच्चों से चिढ़ने लगते हैं। प्रेमचन्द ने यहा कथानक का भाव मानसिक स्तर में अन्तरतम भाव को उद्घाटित करता है। इस कहानी में किसी भी वाद-विवाद को तलाशना बेमानी है। मात्र मानसिक उलझन या दबाव के कारण उपजी प्रवृत्ति ही इस कहानी का उद्देश्य है। यह मानव स्वभाव कि जब किसी कार्य में सफलता नहीं मिल पाती तो वह अपने दोष को दर-किनार कर दूसरों पर अपने जैसा न बनने की सलाह देता है। यह प्रेमचन्द की सफल मनोवैज्ञानिक शैली है।

10.6शब्दावली

- कनकौआ - पतंग
- फेहरिस्त - सूची
- सिफर - परिणाम विहीन
- घोंघा - कम अक्ल
- निपुण - कुशल

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सही
2. सही
3. सही
4. गलत
5. सही

10.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रेमचंद संचयन- साहित्य अकादमी
2. शर्मा, रामविलास – प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन।

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. कहानी ''बड़े भाई साहब'' की समीक्षा कहानी तत्वों के आधार पर करें।
2. बड़े भाई का चरित्र चित्रण करें।
3. कहानी के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर प्रकाश डालें।
4. 'बड़े भाई साहब'' कहानी से आपको क्या सीख मिलती है।

इकाई 11 - सुहागिनी (शैलेश मटियानी) : पाठ एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 लेखक परिचय
11.4 कहानी का पाठ (वाचन)
11.5 कहानी का सार
11.6 कहानी की सप्रसंग व्याख्या
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.11 उपयोगी पाठ्यसामग्री
11.12 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आपने जाना, कहानी साहित्य में समाज और लोक की छवि होती है, इसीलिये विविध कहानीकारों ने जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

आप अच्छी तरह से जानते हैं कि जीवन विविध स्तरीय और विविध रूपों वाला होता है। आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में जीवन के सूक्ष्मतम स्वरूप को उद्घाटित किया गया है। हमारा समाज विभिन्न सामाजिक पद्धतियों और लोकपरम्पराओं के अनुसार चलता है। आप यह भी जानते हैं कि स्त्री-पुरुष एक दूसरे के पूरक माने जाते है। इसके बावज़ूद स्त्री की सामाजिक स्थिति पुरुष से हेय मानी जाती है। हमारे समाज में बहुत से रीति-रिवाज़ ऐसे हैं जो स्त्री की इसी हेय स्थिति को बढ़ावा देते हैं। प्रस्तुत कहानी में पद्मावती के माध्यम से स्त्री की इसी दशा को उजागर किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सुहागिनी कहानी के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों और विसंगतियों का विश्लेषण करेंगे और इनसे समाज को मुक्त कराने में सहायक होंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- शैलेश मटियानी के रचनात्मक जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- सुहागिनी कथा की विवेचना कर सकेंगे।
- इसमें व्यक्त भावों की व्याख्या कर सकेंगे।
- पात्रों के मनोविज्ञान को समझकर व्यवहारिक जीवन में उनके व्यवहार का औचित्य निर्धारण कर सकेंगे।
- अंधविश्वास और भ्रामक रूढ़ियों का विश्लेषण करने में सक्षम होंगे।

11.3 लेखक परिचय

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में आंचलिक कथाकार के रूप में एक विशिष्ट पहचान रखने वाले श्री शैलेश मटियानी का जन्म 14 अक्टूबर 1931 को बाड़ेछीना (अल्मोड़ा) में हुआ। **रमेश सिंह मटियानी 'शैलेश'** की औपचारिक शिक्षा हाईस्कूल तक हुई। परिस्थितियाँ कुछ इस तरह की रहीं कि इन्हें अल्मोड़ा से बम्बई जाना पड़ा। वहाँ इन्होंने नौ-दस वर्ष तक एक चायघर में बैरा का कार्य किया,यही नहीं इन्हीं के कथनानुसार इन्होंने कसाई का काम भी किया।

मटियानीजी ने 100 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। इनके 20 उपन्यास और लगभग इतने ही कहानी-संग्रह हैं। उन्होंने गद्य की अन्य विविध विधाओं पर भी लिखा है। इब्बू मलंग, प्रेतमुक्ति, चौथी मुट्ठी इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। मुखसरोवर के हंस, आकाश कितना अनंत है बावन नदियों का संगम उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इनकी कहानियों के अंग्रेजी,रूसी तथा सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं।

आप स्वतंत्र रूप से लेखन का कार्य करते रहे हैं। आपने इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली अनियतकालीन पत्रिका 'जनपक्ष' तथा साहित्यिक पत्रिका 'विकल्प' के कुछ अंकों का सम्पादन भी किया है।

11.4 कहानी का पाठ (वाचन)

सुहागिनी

सुवा रे, ओ सुवा!
बनखण्डी रे सुवा!

हरियो तेरो गात,
पिंडलो तेरो ठूना-
बन खण्डी रे, सुवा! **विवाह के समय निमंत्रण की पंक्तियॉं**

काँसे की थाली में कमलावती बोज्यू रोली-अक्षत भिगो रही थीं और पद्मावती अपनी डबडबायी आँखों से देख रही थी कि उसकी ऑखों की पुतलियों में जो आत्मजल केवड़े के किश्तीनुमा पत्तों में अटकी ओस की बूंदों की तरह थरथरा रहा है, उसमें कमलावती बोज्यू का ही नहीं, आस-पास के सारे वातावरण का पूरा-पूरा प्रतिबिम्ब उभर रहा है-बनखणडी रे, सुवा ! हरियो तेरो गात..

कमलावती बोज्यू बार-बार कदलीपत्रों की पालकी में बैठे बरदेवता श्री रामचन्द्र को टुकुर-टुकुर देखती हैं और उनके आँसू , एकबारगी छलछलाकर काँसे की थाली में गिरते हैं और लगता है, रोली-अक्षत एकाकार हो जाते हैं ! ...और काँसे की थाली हौले से ऐसे छणछणा उठती है, जैसे बरसात की बूंदों से टीन की छत बजने लगती है-ओ सुवा, रे सुवा! बनखणडी रे सुवा! **पद्मावती के कलश विवाह की तैयारी चल रही है।**

ओ सुवा, रे सुवा!
बनखण्डी रे.....

पद्मावती ने एकाएक अपनी डबडबायी आँखों को सामने सुंयालघाटी की ओर उठा दिया-!हे राम, कभी-कभी बनखण्डी शुकों की-हरियाले देह, पियरायी चोंचोंवाली शुकों की-पूरी पाँत-की-पाँत आँखों की पुतलियों को ढॉपती चली जाती है ! (**कहानी की नायिका के मन:स्थिति का चित्रण है)**

मगर एकदम छलछल भी हुई आँखों के बावजूद आज पद्मावती को सारी सुंयालघाटी एकदम रोती-रोती ही लगी। बनखण्डी शुकों की बोज्यू दीठ बाँधती, पुतलियाँ ढाँपती नहीं दिखायी दी। पद्मावती को लगा कि अरे, उसके आस-पास तो उसकी शादी के शकुन-आखरों के शकुन चहचहा रहे हैं और हरियाये-पियराये बनखण्डी शुकों को न्योत रहे हैं-बनखण्डी रे....

और पाताल भुवनेश्वर की अछोर अन्तर्गुहाओं-जैसे उसके कान गूंजते ही चले जा रहे हैं, शकुन ऑखर के शकुनों की चहचहाती अनुगूँजों से, और बनखणडी शुकों की पाँत-की-पाँत उसकी आत्मा की अन्तर्गुहाओं की सुंयालघाटी में उड़ती ही चली जा रही है.....उड़ती ही चली जा रही है.....

बनखण्डी, रे सुवा!
हरियो तेरो गात
पिंङलो तेरो ठूना ..... (**कहानी की नायिका की मन:स्थिति का चित्रण है)**

कमलावती बोज्यू की आँखों में उसके प्रति संवेदना के आँसू हैं और वह उनके एकदम सामने ही बैठी हैं, सो उनकी पुतलियाँ छलछलाती हैं, तो आँसू काँसे की थाली की ओर निकास पा जाते हैं। मगर पद्मावती की व्यथा अपनी ही उस आत्मस्था पद्मावती के प्रति है, जो कुँवारेपन के पैंतालीस साल बिता चुकने के बाद दुलहन की तरह सँवरी, लजायी बैठी है, तो कदली-पत्रों

की पालकी में जो बरदेवता श्री रामचन्द्र बैठे हुए है, उनकी ताम्रवर्ण देह दीपकों के उजाले में कुछ ऐसी चमक उठती है कि पद्मावती को लगता है, सारे दीपक उसकी अन्तर्गुहा में जल रहे हैं......शकूना देही, राजा रामचन्द्र, अजुध्यावासी.....(**पद्मावती की भाभी की व्यथा)**

अन्दर जो कुण्ठित कौमार्य को और ज्यादा बेधने वाले दीपक जल रहे हैं इस प्रौढ़ावस्था में सिर्फ परलोक में तारण के लिए दुलहन बनने की विवशता के, भाई को निवास नहीं मिल पा रहा, तो लगता है आत्मा की अन्तर परतों में काजल बैठा जा रहा है। ---हे राम, जिन सुहागिनों की गोद में छौने आते रहते हैं, वो कैसे छोटी-छोटी डिबियां में काजल समेटकर रखे रहती है घूटने पर बालक के सिर को हिलाती 'हूँ-हूँ' करती हुई अंगुली की पोर से काजल ऑजती है, तो बालक की आँखों की किनारियों में अंगुली के चक्र या शंख की छाप उतर आती है।

मगर ताँबे का कलश, ताँबे का श्री रामचन्द्र सुहागिनी बना सकता है, लेकिन.....लेकिन....

अन्दर दुख उमड़ पड़ रहा था, मगर फिर भी पद्मावती को शरम लग गई कि छिच्छी, इतनी औरतों के सामने कितनी छिछोर बात सोचती हूँ मैं भी !

आत्मस्था पद्मावती के प्रति व्यथा के आँसू बाहर को निकास नहीं पाते हैं। कहीं अन्तर्गुहा में बालसंन्यासिनी की तरह अवसत्र बैठी पद्मावती क्षण-क्षण में अपना रूप बदलती रहती है...और बेर-बेर पुतलियाँ रहट के खोखों की तरह, बाहर को घूमने के बावजूद, अन्दर की ओर छलछला जाती हैं और आँसू बूंद-बूंद अन्तर्गुहा में जलते दीपकों की लौ पर गिरते हैं-

बनखण्डी, रे सुवा!
ओ सुवा, रे सुवा!

शकुन आँखरों की गूँज सुनते ही पास-पड़ोस के विवाहों में पक्षी की तरह चहचहाती दौड़ती थी पद्मावती। वह उम्र बहुत पहले ही बीत चुकी हैं, मगर उस चहचहाट की मर्मवेधी अनुगूँज आज तक शेष है। रंग एकदम साँवला, आँखे एकदम मिचमिची और देह सूखी हुई। दिखने में पद्मावती

अपनी तरूणाई में भी कुछ नहीं थी मगर कण्ठ इतना सुरीला था कि सात-सात शकुन ऑखर गानेवाली बैठी हों, तो उसका सातवाँ सुर सबसे अलग ऐसा गूँजता था कि और गानेवालियों की आवाजें उनकी ईर्ष्या ओर कुण्ठा से और भी भद्दी लगने लगती थीं। **(पद्मावती का विवाह न हो पाने से कुण्ठित कौमार्य का चित्र)**

कमलावती बोज्यू तो तब भी यही कहती थीं कि 'लली, बहुत शकुन गाती हो तुम।......और इतनी मधुर मीठी आवाज में कि लगता है, तुम सिर्फ शकुन गाने के लिए ही जन्मी हो, सुनने के लिए नहीं!

पद्मावती तब भी जानती थी, कमलावती बोज्यू के मुँह से उनकी कितनी आंतरिक-व्यथा बोलती है। ब्राह्मण-कन्या तो पैसेवालों की भी बहुत परेशानियों के बाद ही ब्याही जाती है, वह तो एक दरिद्र परिवार की कन्या थी और कुरूपा। गोरे कपाल में तो काजल का टीका भी बहुत फबता है, मगर काले कपाल की रेखाएँ तो चन्दन के तिलक से भी उजली नहीं हो पाती हैं।

सोने-चाँदी के आसन पर तो शालिग्राम भी पूजा जाता है, मगर दान-दहेज से रीती उस सूखे काठ-जैसी काया को कौन देगा अपने घर में बहू का आसन

गरीब पुरोहित के घर में जन्म लिया था पद्मावती ने। एक सूखे काठ-जैसी साँवली काया पायी थी, मगर आत्मा उस देह की कठबाड़ के पार कभी बन-खण्डों में उन्मुक्त चहकती, चहचहाती रहती थी और कभी तिरस्कृता-सी बिलखती रहती थी। कठबाड़-जैसी काया को सभी देखते थे, कठबाड़ के पार देखनेवाली आँखे बहुत दुर्लभ थीं। एक जोड़ी आँखें बड़े भाई बुद्धिबल्लभ पुरोहित की, एक जोड़ी कमलावती बोज्यू की। भाई-भाई की अन्तर्व्यथा से छलछलाती आँखों की ज्योति कठवाड़ के पार भी पहुँचती थी, मगर कभी-कभी कठबाड़ से ही टकराकर धुँधली पड़ जाती थी। अपनी गरीबी और बहन की कुँवारी काया के बोझ से दबे पुरोहित बुद्धिबल्लभ भी कभी-कभी बहुत खीझ उठते थे कि इस अभागिन के कारण तो मुझे भी नरक भोगना पड़ेगा ! जिस ब्राह्मण के घर में आज तक कुँवारी बैठी बहन राख के अन्दर के कोयले की तरह अपने दुखों में सुलगती रहे, उसका तारण तो चौंसठ तीरथों की परिक्रमा से भी नहीं हो सकता! **(पद्मावती का विवाह न हो पाने के कारण भाई के मन में अपराधबोध और धर्मभीरूता का भाव प्रकट होता है।)**

....

अभ्यास प्रश्न

नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गए उत्तर से मिलाइये।

1. पद्मावती की भाभी (कमलावती बोज्यू) की आँखों से बहने वाले आँसुओं में कौन सा भाव है?

क.लज्जा

ख.क्रोध

ग.करुणा

2. जिस ब्राह्मण के घर में आज तक कुँवारी बैठी बहन राख के अन्दर के कोयले की तरह अपने दुखों में सुलगती रहे, उसका तारण तो चौंसठ तीरथों की परिक्रमा से भी नहीं हो सकता! पंक्ति में कौन सा भाव झलकता है?

क. सामाजिक परम्पराओं में निहित विवशता।

ख**.**शास्त्रीय विधानों का अनुपालन न कर पाने से जन्मा अपराधबोध।

ग.बहन के प्रति कर्तव्य न निबाह पाने का दर्द।

कमलावती बोज्यू अपने पॉच बच्चों की ओर देखती थीं, तो उन्हें भी पद्मावती खटकने लगती थी कि कहीं कभी कोई काना-रँडुवा ब्राह्मण मिल ही गया, तो कहीं बुद्धिबल्लभ घर की

लटी-पटी घो-पोंछकर पद्मा के ही पीछे न लगा दें! **(निर्धनता के कारण ,अपने परिवार के भविष्य की चिन्ता का भाव है)**

मगर उन्होंने ही तो कहा था कि पद्मा शकुन-आँखर गाने के लिए पैदा हुई है, सुनने को नहीं! बरस-पर-बरस बीतते गए थे। तीस-पार पहुँचते-पहुँचते पद्मावती की आत्मा निराशा-कुण्ठा से बंजर होने लगी थी। मगर एक अनहोनी जैसी यह जरूर घटने लगी थी कि आत्मा के वीरान बनखण्डों की तरह अवसाद और कुण्ठा के घने कोहरे में डूबते ही-पैंतीस तक पहुँचते-पहुँचते-पद्मावती की सूखी-साँवली देह भरती चली गई और सैंतीस बरसों की उम्र काट चुकने के बाद पद्मावती को पुरूषदीठ अटकने का सुख तब मिला था, जब मोहल्ले के अपर स्कूल का हेडमास्टर गंगासिंह हँस पड़ा था कि ‘बौराणाज्यू, पुराना गुड़ और ज्यादा गुणकारी होता है, ऐसा सुना तो मैंने भी था, मगर आँखों से पहली बार देख रहा हूँ तब पद्मावती अपने भतीजों को स्कूल पहुँचाने जाती थी। गंगासिंह हेडमास्टर बड़ी आसक्ति के साथ-घूरता बातें करता है, इससे एक सार्थकता का बोध सुख अवश्य देता था, मगर आत्मा प्रताड़ित करने लगती थी कि कहीं तीन-तीन शादियों के होते भी एकदम कुँवारे छोकरों की तरह आँखें भुर-भुरानेवाला हेडमास्टर अपने अपर स्कूल की सरहद से बहुत आगे तक न बढ़ आये!.....सो एक दिन पद्मावती का हाथ पकड़ने की कोशिश की तो ‘हट साले खसिया!’ कहकर पद्मा ने अपना हाथ छुड़ा लिया था तबसे उसके मुँह से पुराने गुड़ के स्वाद में लिपटी हुई आवाज निकलनी बन्द हो गई थी। ऑखें भुरभुराकर ‘बौराणज्यू’ ‘बौराणाज्यू’ कहने का भेद हो गया था।**(अधेड़ उम्र तक अविवाहित रहने पर प्रथम बार किसी पुरुष के आकर्षण का केन्द्रबिन्दु न हो पाने की पीड़ा के बावजूद झिड़कना पद्मावती का विवाह न हो पाने से कुण्ठित कौमार्य का चित्रांकन है)**

पड़ोसवाले तो बहुत कान बचाते थे कि बेमौसम आयी हुई बाढ़ और ज्यादा खेत तोड़ती है, मगर ईश्वर साक्षी है कि देह भरने के बाद भी सिर्फ पुरूषों की आँखों में आसक्ति देखने-भर का सुख ही भोगा पद्मावती ने। बल्कि धीरे-धीरे इससे भी उसे एकदम घृणा और वितृष्णा हो गई थी, क्योंकि उसे घूरने-छेड़ने वाले पुरूष बहुधा तीस-पैंतीस पार के ही होते थे। मगर पद्मावती की आत्मा में उसके शकुन गाने की उम्र ही छायी हुई थी। तीस-पार पहुँचने पर शकुन गाना छोड़ दिया था पद्मावती ने, मगर जब-जब पुरूष के प्यार के लिए मोह जागता था, ममता जागती थी, उम्र एकदम घटती चली जाती थी, जैसे धूप ज्यादा बढ़ने पर छाया छोटी होती चली जाती है। आत्मा में कल्पना पुरूष सूरज कमल-जैसा खिलता चला जाता है।

और अब पैंतालिसवें बरस में एक लज्जास्पद अनहोनी यह भी घट रही है कि खुद पद्मावती के कान ही शकुन-आँखर सुन रहे है! कदलीपत्रों की पालकी में वरदेवता श्री रामचन्द्र के रूप में ताँबे का कलश बैठा हुआ है। कमलावती बोज्यू के आँसू काँसे की थाली में बिखर रहे हैं और मरणासन्न भाई बुद्धिबल्लभ ‘कन्यादान’ की सामग्री ठीक कर रहे हैं।

पद्मावती तो हठ बाँध रही थी कि ’इस प्रौढ़ावस्था में यह गुड़ियों का जैसा खेल मैं नहीं रचा सकती!.....मगर जब खुद भाई ने आँसू गिरा दिये ‘पद्मा, मेरा अन्त समय आ गया है। बहुतों की सद्गति करके उनका तारण मैंने किया है, मगर अब मुझे अपना ही तारण दुर्लभ हो रहा है। तेरा

भाई-पिता जो-कुछ हूँ मैं ही अभागा दरिद्र ब्राह्मण हूँ, पद्मा! मैं अभागा अपने भाई का धर्म नहीं निभा सका, मगर तू तो कल्याणी कुललक्ष्मी है ! तू अपनी दया निभा दे। तुझे सुहागिन देखने से मेरा तारण हो जायेगा।.....लली, इतना मैं भी समझता ही हूँ कि ताँबे का कलश सुहाग के कंकण-मंगलसूत्र ही दे सकता है, सुहाग का सुख नहीं दे सकता मगर........

अपने साठ-बासठ के सहोदर का बच्चों-जैसा विह्वल रुदन और ज्यादा नहीं झेल पायी थी पद्मावती और चुपचाप चली आई थी-''बोज्यू, इस वृद्धावस्था में मुझे सुहागिन बना दो !''......और एकदम भरने के बाद ओंधी पड़ी ताँबे की कलशी-जैसी छलछलाती ही चली गई थी, बिलखती ही गई थी-हे राम!हे राम! हे राम!

रामीचन्द्र, अजुध्यावासी। ....सीतारानी मिथिलावासिनी-ई-ई-ए शकूना देही

..

3. पद्मावती को 45 वर्ष की उम्र में विवाह करना क्यों आवश्यक लगा

क. पद्मावती विवाह करना आवश्यक समझ रही थी।

ख. पद्मावती से अपने भाई का कष्ट देखा नहीं गया।

4. पद्मावती को विवाह के लिये बाध्य करने वाले भाई के कथन को लिखिये।

सुहागिन बने भी अब सात-साठ बरस बीत गए हैं।

इन सात-आठ वर्षो में पद्मावती ने धीरे-धीरे अपने उस कल्पनापुरूष को प्रतिष्ठित कर लिया, जो तीस तक की पद्मावती अपने लिए खोजती रहती थी।

शुरू-शुरू में ताँबे का कलश विद्रूप लगता था, मगर एक दिन जब छोटे भतीजे ने उसमें पेशाब कर दी और कमलावती बोज्यू ने उपेक्षापूर्वक हँसते हुए बात टाल दी, तो एकाएक पद्मावती की आत्मा उत्तेजित हो उठी थी-"तुम्हारे लिए यह सिर्फ ताँबे का कलश ही होगा, बोज्यू, मगर मेरे लिए तो मेरा सुहाग भी है!''

उत्तर में कमलावती बोज्यू ने व्यंग्यपूर्वक कहा था 'लली, सुहाग तो पलँग में शोभा देता है, तुलसी के कनिस्तर के पास नहीं पड़ा रहता !'

पद्मावती एकदम तड़प उठी थी – "बोज्यू, इस वृद्धावस्था में भी बकते हुए शरम नहीं लगती तुम्हें''

और उसी दिन से पद्मावती ने ताँबे के कलश को इतने ऊँचे चबूतरे पर रखना शुरू कर दिया था कि कमलावती बोज्यू के बच्चे वहाँ तक न पहुँच सकें। रोज, दिशा खुलते ही, पद्मा चबूतरे पर से कलश उतारकर पनघट चली जाती थी। स्नान कर लेने के बाद उस आत्मस्थ कल्पना-पुरूष के आधार जलकुम्भ को स्नान कराती थी। स्वच्छ पत्थर पर चन्दन घिसती थी और विष्णुरूप जल-पुरूष का अभिषेक करती थी - कस्तूरी तिलकं ललाट पटले, वक्षस्थले च कौस्तुभं.....

सुदूर जालना पहाड़ी की चोटी पर पहली-पहली सूर्य-ज्योति सल्लि-वृक्षों की चोटियाँ उजली बना देती थी। जलभरे ताम्र-कलश के मुँह तक छलछलाते पानी में पद्मावती प्रतिबिम्ब देखने लगती थी। आँखों की पुतलियाँ मोह और अवसाद से थर-थर काँप उठती थीं। ताम्र-कलश

के मुँह पर पानी के दायरे कँपकँपा उठते थे। लगता था, कल्पना-पुरूष का मुख-बिम्ब उपर उतर आया है-कस्तूरी तिलकं ललाट पटले........पहले भी नित्य जल भरती थी पद्मावती, मगर दिनभर कौवे चोंच डाल-डालकर पानी पीते रहते थे, तो पद्मावती हाँकती भी नहीं थी। मगर बाद में मौसमी फूलों या पीपल के पत्तों का गुच्छा उपर रखने लगी थी, ताकि कौवों की चोंच पानी तक न पहुँच सके, ताकि ताम्र-कलश की एकदम उपरी जल-परत पर उभरा हुआ मुखबिम्ब खण्डित न हो सके....। **(ताम्रकलश को पति के रूप में मानते हुए पद्मावती पति रूप में तरह-तरह से परिचर्या करने लगती है।)**

एक किशोरियों का जैसा बावलापन, तरूणियों की जैसी सौन्दर्यानुभूति और गृहिणियों-सा अपनाव-ताम्र-कलश पद्मावती की आँखों में एकदम छा गया था। लोग ही नहीं, कमलावती बोज्यू भी परिहास करती थीं। न जाने कमलावती बोज्यू ने बात फैलायी थी या पड़ोसिनों की कल्पना इतनी प्रखर थी, सारे मोहल्ले में यह चर्चा फैल गई थी कि पद्मावती अपने स्वामी को रात में अपने ही साथ सुलाया करती है! हे राम, ताँबे के कलश को अपने साथ...... **(ताम्रकलश को पद्मावती पति रूप में मान तरह-तरह की कल्पनायें करने लगती है।)**

शायद यह बात तो कमलावती बोज्यू ने ही फैलायी होगी कि, मैं नीचे गोठ में सोती हूँ पद्मा ललीज्यू उपरवाले तल्ले पर सोती हैं। एक रात ऊपर की पाल से पानी नीचे चू रहा था-शायद ताँबे का कलश औंधा पड़ गया होगा!

पद्मावती क्या जानती थी, कमलावती बोज्यू इतनी बदमाश हैं। वह तो यही समझती थी कि सबकी आँखें लग जाने के बाद ही वह ताम्र-कलश को चबूतरे पर से ले जाकर अपने सिरहाने रखती है और दिशा खुलते ही जल भरने चली जाती है।

छिः हाड़ी, इस चतुर्थावस्था में भी कमलावती बोज्यू की विमति नहीं गई है। ननदों के भेद लेने, उनसे चुहलबाजी करने की यह उम्र थोड़े ही होती है!

कभी-कभी पद्मा कमलावती बोज्यू के प्रति खीझती तो है। मगर फिर अपने ही प्रति उलाहने की लाज में डूब जाती है कि ‘छि हाड़ी’ बोज्यू को तो बहुत गिन-गिनकर नाम रखती हूँ मैं, मगर सफेद धतूरे-जैसी फूल जाने पर भी मेरी मति क्यों इतनी बावली है! इस अवस्था में तो कोई साक्षात शरीरवाले पति को भी इतना प्यार नहीं करती होगी !’

कमलावती बोज्यू विनोद में कहा करती थीं कि ‘हमारी पद्मा ललीज्यू बड़ी तपस्विनी हैं। जितनी सेवा-टहल ललीज्यू इस ताँबे के खसम की करती हैं, उतनी तो मैं अपने हाड़-मांस के स्वामी की भी नहीं कर सकी..........! आखिर पद्मावती ललीज्यू के ही कुम्भ से तो नहीं जनमेगा फिर कोई अगस्त्य मुनि!’

हे राम, कमलावती बोज्यू कितनी चण्ट हैं! पद्मावती ने सिर्फ इतनी-सी कल्पना ही तो की थी एक दिन कि पहले के सतयुग में तो पुरूष के स्मरण-मात्र से भी गर्भ रह जाया करता था....! मगर यह कल्पना करने के दिन जब बावलेपन में ताम्र-कलश छलछला गया था, तो खुद पद्मावती ही कितनी डूब गई थी शरम में, वह जानती है.......! एक मर्मवेधी आशंका भी आत्मा को थरथरा गई थी कि कहीं सचमुच रह ही गया गर्भ, तो पड़ोस की छिछोर औरतें उसकी

आत्मिक श्रद्धा को थोड़े ही देखेंगी! सभी यही कहेंगी कि इस बुढ़ापे में धरम गँवाते लाज भी नहीं लगी........! **(पद्मावती की कुण्ठा से उत्पन्न कल्पनाओं में भी उसका कुण्ठा भाव दृष्टिगत होता है। वह काल्पनिक पुरुष से ही गर्भवती हो जाने की सम्भावना की कल्पना तक कर डालती है)**

अरी छिछोरो, जितनी शरम ताँबे के कलश की है, उतनी तो तुमने हाड़मांस के खसम की भी नहीं की होगी! देखता कोई कि पहले-पहले ताँबे के कलश को सिरहाने रखते हुए कैसे घूंघट निकाल लेती थी पद्मा, तब जानतीं कि लाज-शरम करनेवाला हिया ही और होता है!

बीच में सात-आठ दिन बीमार पड़ गई थी, तो बिस्तरे से लग गई पद्मावती। बिस्तरे में पड़े-पड़े ही उसे यह यथार्थ बेधता रहा कि उसके चाहने के बावजूद अब तू-तू क्यों नहीं कहता कोई। और तो और, कमलावती बोज्यू भी 'तुम' ही कहती हैं। पहले कभी-कभार तू-तू कहती थीं, बड़ा मधुर लगता था। मगर इधर कमलावती बोज्यू का मधुर स्वर एकदम तीता-तीखा होता चला आया है। कभी क्रोध में बोलती हैं, तो लगता है, गला खँखार-खँखारकर थूक रही हैं! लगातार सात दिनों तक ताँबे का कलश बासी ही पड़ा रहा, तो पद्मावती से नहीं रहा गया- "मेरे जिन्दा रहते ही यह दुर्गति हो रही है, तो मेरे मरने के बाद तो टमटों के यहाँ पहुँच जायेगा....!'' कहते-कहते एक ओर तो बुरी तरह बिलख पड़ी थी पद्मावती, दूसरी ओर खीझ भी थी अपनी असंयत वाणी के प्रति कि 'तू' कहना भारतीय नारी के लिए धर्म-विरूद्ध है!

कल तो कमलावती बोज्यू ने टाल दिया था कि 'पद्मावती ललीज्यू' तुम्हारा तो सिर्फ एक ताँबे का ही कलश ठहरा....! मेरे तो हाड़-मांस के ही कलश इतने हैं कि इन्हीं के काम-काज से उबर नहीं पाती।'

पद्मावती एकदम व्यथित हो उठी थी- "बोज्यू, उदर में हाथ डालकर कलेजा क्यों मरोड़ती हो! इतना तो मैं भी जानती हूँ कि ताँबे के खसम से सन्तति नहीं जनमा करती और तुम्हारी सन्तति न मुझे जीते-जी सुख दे सकती है और न मरने पर सद्गति...। मगर कहीं से लफन्दर लगाकर तो मैं सन्तति जनमा नहीं सकती थी न, बोज्यू!''

कल रात-भर कमलावती बोज्यू पश्चाताप से सिसकती रही थीं। आज सवेरे-सवेरे पद्मावती के पास पहुँच गई थीं- "ललीज्यू, तुम्हारा दुख जानती हूँ। मेरा पाप क्षमा करना। मुण्ड-चामुण्ड इतना झिंझोड़ देते हैं कि वाणी वश में रहती नहीं हैं। तुम्हें भी दुखा बैठती हूँ।......मगर असल बात यह है, ललीज्यू, कि तुम्हारे ताँबे के कलश में जल भरना मेरे लिए तो एकदम निषिद्ध ही ठहरा। उसे तो तुम्हें ही भरना होता है। नहीं तो मैं किसी और से ही भरवा देती.........।"

टूट-टूट रही थी देह, मगर फिर भी पद्मावती उठ गई कि आज आठवां दिन लग गया है। ज्यों-त्यों भरकर रखना ही होगा नया जल। न जाने किस जनम पति को क्लेश पहुँचाया होगा, इस जनम में यह गति है। इस जनम में भी सेवा नहीं हो पाई तो फिर कैसे तारण होगा!

अभ्यास प्रश्न

5. कमलावती पद्मावती के ताम्रकलश में पानी क्यों नहीं भरती ?

6. बीमारी में भी पद्मावती ताम्रकलश में पानी भरने क्यों जाती है ?

घुटने बजने लगते हैं चबूतरे पर चढ़ते, तो लगता है, आत्मा के बनखण्ड में चहकते शकुनों को किसी निर्मम व्याध ने बेध दिया है और तीरों से घायल शकुनों की पाँत विलाप करते हुए व्याकुल-कण्ठ से चीत्कार कर रही है-

ओ सुवा, रे सुवा!
बनखण्डी, रे सुवा!
हरियो तेरो गात.....
कहाँ है, रे तू सुवा
पिंडलो तेरो ठूना-
कहाँ हे, रे तू सुवा

एकदम भावाकुल होकर पद्मावती ने हाथों में उठाये ताम्र-कलश पर दीठ डाली कि बासी जल में भी उतरता होगा प्रतिविम्ब

धर-थर-थर-थर कृश हथेलियाँ काँप उठीं और ताम्र-कलश चबूतरे से एकदम नीचे आँगन के पथरौटे पर गिर पड़ा......।

हे राम! हे राम!

पद्मावती का करूणाविलाप सुनकर पास-पड़ोस के कई लोग एकत्र हो गए, मगर पद्मावती की आँखों को तो सिर्फ पिचके हुए ताम्र-कलश के अलावा और कुछ दिख ही नहीं रहा था। बिलखती ही चली जा रही थी कि गंगासिंह हेडमास्टर की तीसरी घरवाली, जो खुद भी पहले दो घर त्यागकर आई थी, पद्मावती के कानों को बेध गई- "छिः छिः ! एक ताँबे की टिटरी के लिए ऐसा करुण विलाप करते हुए शरम भी नहीं आ रही है पद्मा बौराणाज्यू को ! अरे, यह फूट गया है, तो क्या दूसरा नया कलश नहीं मिल सकता बाजार में''

पद्मावती ने आँसू छलछलाती आँखों के जल को एकदम आत्मस्थ कर लिया। देखा, सामने गंगासिंह हेडमास्टर भी खड़ा है। पद्मावती एकदम विकट स्वर में चिल्ला उठी- "चुप रह, ओ खसिणी! मैं कोई तुझ-जैसी तिघिरिया पातर नहीं हूँ! नया कलश नहीं मिल सकता है कहती है, राँड ! अरी, तू ही ढूँढ़ती रह, तुझे ही मुबारक हों नये-नये खसम ! ......मैं तुझ-जैसी कमनियत खसिणी नहीं हूँ-पतिव्रता ब्राह्मणी हूँ। तू मत रोना जब तेरा खसम भी मरे तो। कसम है तुझे तेरी ही औलाद की.....! **(पद्मावती की कुण्ठा व्यक्त हुई है।)**

पद्मावती के विकट स्वर से सभी अचकचा गए। कमलावती बोज्यू को इस बात का बुरा लगा कि ‘हे राम, पद्मा ललीज्यू के हृदय की व्यथा को यहाँ कौन समझनेवाला है ये सब लोग सिर्फ तमाशा देखने वाले हैं।

कमलावती बोज्यू आगे बढ़ीं। बड़े लाड़-प्यार से पद्मावती की आँखों को पोंछा। पहले बहे हुए आँसू कपोलों की झुर्रियों में अटक गए थे। संवेदना जताते हुए, कमलातवी बोज्यू बोली-

"पद्मा ललीज्यू, अब चुप हो जाओ! अरे, बावली, इतना करूण विलाप तो कोई हाड़-मांस के स्वामी के मर जाने पर भी नहीं करता! ताँबे का कलश थोड़ा पिचक ही तो गया है! मैं इसे ठीक करवा दूँगी।"

इस कल्पना से ही सिहर उठी कि ठीक करने दिये गए कलश को तो पहले टमटा भट्टी पर चढ़ायेगा और फिर हथौड़ों से उसे.....

हे राम!हे राम !

पद्मावती कहना चाहती थी कि 'बोज्यू, तुम भी सिर्फ कलश के पिचकने की बात ही क्यों देखती हो ! मेरी आत्मा क्यों नहीं दिखती तुम्हें मगर कण्ठ-स्वर अजाने ही रूखा हो गया। आज पहली बार पद्मावती को लगा कि वह भी कमलावती बोज्यू की ही तरह खँखार-खँखारकर कह रही है-"अरे, बोज्यू, तुम क्यों नहीं कहोगी ऐसा! तुम तो अब विधवा हो, विधवा! तुम क्या समझोगी कि सुहागिनी के मन की ममता-व्यथा क्या होती है!''

और एकदम बच्चियों की तरह बिलखती हुई पद्मावती अन्दर चली गई।

....

अभ्यास प्रश्न

7. बोज्यू, तुम क्यों नहीं कहोगी ऐसा! तुम तो अब विधवा हो, विधवा! तुम क्या समझोगी कि सुहागिनी के मन की ममता-व्यथा क्या होती है!'' इस पंक्ति में कौन सा भाव छिपा है

क. सुहागिन होने का भाव

ख. भाभी को दु:ख देने का भाव

ग. कुंठा का भाव

8. ताम्रकलश से विवाह के बाद पद्मावती धीरे-धीरे उसे पति ही मान लेती है ऐसा कोई उद्धरण पाठ में से दीजिये।

....
....
....
....

11.5 कहानी का सार

सुहागिनी की कथानायिका पद्मावती का जन्म उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के एक ग़रीब ग्रामीण ब्राह्मण परिवार में हुआ है। वह दिखनें में सुन्दर भी नहीं है, इसलिये पैंतालीस वर्ष की उम्र तक भी विवाह नहीं हो पाया है। हिन्दु धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाह संस्कार जरूरी माना जाता है। यदि किसी लड़की का विवाह नहीं हो पाता है, तो उसके लिए घट विवाह की परम्परा है। यह

परम्परा देश के अनेक हिस्सों के साथ साथ उत्तराखण्ड में भी प्रचलन में है। पद्मावती के बड़े भाई जब बहुत बीमार हो जाते हैं तब उन्हें यह चिन्ता सताती है कि वह पद्मावती का विवाह नहीं कर पाये। उन्हें बड़े भाई का उत्तरदायित्व न निभा पाने का दर्द तो है ही साथ ही पाप भागी बनने और परलोक बिगड़ने का भय भी दिखाई पड़ता है। भाई के अनुरोध पर पद्मावती इस विवाह के लिये अनिच्छा के बावजूद तैयार हो जाती । पद्मावती का विवाह होने के बाद धीरे-धीरे वह घड़े को पति के रूप में स्वीकार जैसा कर लेती है। वह नित्य सुबह घड़े को धोकर उसे सजाती है। एक दिन भाई के बेटे के उसमें पेशाब कर देने पर वह बहुत आहत होती है। घड़े को पति जैसा दर्जा दे दिये जाने पर भाभी उसे छेड़ भी दिया करती है, पद्मावती को भी लगता है कि भाभी इस उम्र में भी ऐसे मजाक कर रही है, और वह लजा भी जाती है। एक दिन बहुत तबियत खराब होने पर भी जब वह घड़े को लेकर आ रही होती है फिसल जाने से घड़ा पिचक जाता है। इस पर पद्मावती बहुत विलाप करती है, लगता है जैसे घड़ा उसका जीता जागता पति हो। इस पर जब गांव की एक महिला और उसकी भाभी जब उसे समझाने की कोशिश करती हैं, वह बिफर पड़ती है। वह उस महिला को चरित्रहीन और अपनी भाभी को विधवा होने का ताना देती है।

11.6 संदर्भ सहित व्याख्या

किसी भी साहित्यिक रचना में कुछ अंश ऐसे होते हैं जो रचना के केन्द्रीय भाव को अधिक स्पष्ट करते हैं। कुछ ऐसे अंश होते हैं जिनमें लेखक भाव या विचार को ऐसी भाषा-शैली में व्यक्त करता है, जिन्हें समझने के लिए अधिक व्याख्यायित करने की आवश्यकता होती है। कुछ अंशों में विषय की गहराई में जाने अथवा मूल कथ्य को समझने के लिए भी व्याख्या एवं विश्लेषण की आवश्यकता होती है।

'सुहागिनी' कहानी के ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या यहाँ दे रहे हैं।

उद्धरण :1 आत्मस्था पद्मावती के प्रति व्यथा के आँसू बाहर को निकास नहीं पाते हैं। कहीं अन्तर्गुहा में बालसंन्यासिनी की तरह अवसन्न बैठी पद्मावती क्षण-क्षण में अपना रूप बदलती रहती है...और बेर-बेर पुतलियाँ रहट के खोखों की तरह, बाहर को घूमने के बावजूद, अन्दर की ओर छलछला जाती हैं और आँसू बूंद-बूंद अन्तर्गुहा में जलते दीपकों की लौ पर गिरते हैं-

बनखण्डी, रे सुवा!

ओ सुवा, रे सुवा!

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश श्री शैलेश मटियानी द्वारा रचित 'सुहागिनी' कहानी से लिया गया हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में पद्मावती के विवाह का प्रसंग चल रहा है। विवाह के धार्मिक अनुष्ठानों की तैयारी चल रही है। लेकिन पद्मावती के मन में आह्लाद के स्थान पर विषाद का भाव दिखाई देता है। इसी का मार्मिक चित्रण हुआ है।

व्याख्या : अपने ही में लीन पद्मावती के प्रति भाभी की करुणा का भाव है, लेकिन उन्हें वह बाहर नहीं निकाल पा रही है। क्योंकि वह अपनी संवेदना पद्मावती से ही कहती। पद्मावती की स्थिति यह है कि वह अपने ही में लीन नजर आ रही है। उसकी दशा उस बाल-संन्यासिनी की सी हो रही है जो संसार की व्यावहारिकता और अनुभवों से असम्पृक्त है। बाल-संन्यासिनी की तरह इसलिए क्योंकि वह बचपन से ही सांसारिक जीवन से दूर रहती है और उससे जुड़े सुखों से वंचित रहती है। पद्मावती हर पल में एक नये तरह का व्यवहार करने लगती है। पद्मावती के नेत्रों की पुतलियाँ घूमती तो नजर आ रही हैं, लेकिन अपने में ही खोई-खोई सी भी लगने लगती हैं। लेखक उसकी इस क्रिया की तुलना रहट के खाली डब्बों से करते हुए कहते हैं कि जैसे रहट के चलने पर उसके डब्बे बाहर की तरफ घूमते तो हैं लेकिन उनमें भरा पानी वापस कुएँ में गिरता है, उसी प्रकार पद्मावती की आँखें अपने विषाद से छलछला उठती हैं लेकिन आँसू जैसे मन के भीतर के प्रज्ज्वलित आशा के दीपों की लौ पर गिर रहे हैं, यानि मन में उठने वाली तमाम आकांक्षाओं को आहत कर रहे हैं। और अंदर ही अंदर जैसे एक संवाद चल रहा है। वन में रहने वाले उस तोते से जिस पर विवाह के अवसर पर लोगों को निमंत्रित करने की जिम्मेदारी है। वह भीतर ही भीतर सुवा ओ सुवा कहती रह जाती है।

विशेष :

- पद्मावती की मन:स्थिति का मार्मिक चित्र उकेरा गया है। उसके मनोभावों की तुलना बालसंयासिनी से की गई है। बाल अर्थात् छोटी उम्र की और संयासिनी जो लोक-जीवन से विरत हो। बालसंन्यासिनी की यह विरक्ति स्वाभाविक नहीं होती है, उसे इसका भान ही नहीं होता है।वैसी ही दशा पद्मावती की भी है। ऐसे ही रहट के डब्बों से की गई तुलना है। इन उपमाओं से भाषा में चित्रात्मकता आ गई है। पाठक के सामने पद्मावती के अवसाद का बिम्ब उभर आता है।
- भाषा में बिम्बात्मकता और चित्रात्मकता से काव्यात्मकता आ गई है, जो पद्मावती की मानसिक अवस्था के अनुरूप है।

उद्धरण :2 बुद्धिबल्लभ भी कभी-कभी बहुत खीझ उठते थे कि इस अभागिन के कारण तो मुझे भी नरक भोगना पड़ेगा ! जिस ब्राह्मण के घर में आज तक कुँवारी बैठी बहन राख के अन्दर के कोयले की तरह अपने दुखों में सुलगती रहे, उसका तारण तो चौंसठ तीरथों की परिक्रमा से भी नहीं हो सकता !

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तिया 'सुहागिनी' कहानी से ली गई हैं। इस कहानी के लेखक श्री शैलेश मटियानी हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में पद्मावती के भाई की व्यथा और धर्मभीरुता प्रकट हुई है।

इसके साथ ही स्वाभाविक रूप से पद्मावती का दु:ख भी उसमें खुद-ब-खुद उभरता है।

व्याख्या : लेखक कहते हैं कि कभी-कभी बुद्धिवल्लभ यानि पद्मावती के भाई को इस बात पर झुँझलाहट होती है कि पद्मावती का विवाह न हो पाने के कारण उन्हें नरक का भागीदार बनना

पड़ेगा। खीझ इसलिये क्योंकि इस स्थिति के लिये न वह खुद जिम्मेदार हैं और न ही पद्मावती, परिस्थितियों पर उनका वश नहीं है। उनका मानना है कि जिस ब्राह्मण परिवार की कन्या का विवाह नहीं हो पाता, कन्या अपने इस दु:ख में घुलती रहती है, उस परिवार के लोगों का उद्धार किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। लेखक ने ऐसी कन्या के दु:ख की तुलना राख के ढेर में दबे जलते कोयले से की है, जो धीरे-धीरे लेकिन निरंतर सुलगता रहता है। दूसरे शब्दों में इसे तिल-तिल जलना कह सकते हैं। पद्मावती के भाई मानते हैं कि चौंसठ तीर्थों की परिक्रमा भी उनके इस पाप का निराकरण नहीं कर सकती।

विशेष :

- पद्मावती का विवाह नहो हो पाना उसके लिये तो दु:ख का विषय है ही भाई के लिये भी कष्ट का कारण है। एक ओर तो उनको इस बात का कष्ट है कि बहन का विवाह नहीं हुआ, दूसरी ओर वे इस भय से आक्रांत हैं कि हिन्दु मान्यताओं के अनुसार उनके मोक्ष की राह भी बन्द हो जायेगी।
- पद्मावती के दु:ख को भाई के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है।
- राख के ढेर में दबे अंगारे की सुलगन के साथ पद्मावती की पीड़ा की तुलना की गई है।
- भाषा चित्रात्मक है।
- यह अंश कहानी के मूल तथ्य को अभिव्यक्त करता है।
- हिन्दु धर्मशास्त्रों के अनुसार कुछ तीर्थस्थल ऐसे हैं जिनकी निर्धारित परिक्रमायें करने से पुण्य मिलता है, पापों का नाश होता है, मोक्ष की प्राप्ति होती है। इनमें से नर्वदा की पंचकोसी, मथुरा की गोवर्धनआदि की परिक्रमायें प्रमुख हैं।

अभ्यास :

हमने उपर्युक्त पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या की है। आप इस तरह की पंक्तियाँ और सूक्तियॉ स्वयं चुनकर उनकी व्याख्या कर सकते हैं।

1. निम्नलिखित पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए। आपकी सहायता के लिये कुछ संकेत भी दिए गए हैं।

1) **गोरे कपाल में तो काजल का टीका भी बहुत फबता है, मगर काले कपाल की रेखाएँ तो चन्दन के तिलक से भी उजली नहीं हो पाती हैं।**

संदर्भ : (कहानी और लेखक के नाम का उल्लेख)

प्रसंग : (कहानी में जिस संदर्भ में कहा गया है, उस स्थिति का संक्षेप में विवरण)

....

....

पद्मावती का निर्धन होने के साथ-साथ सुन्दर भी न होना।

व्याख्या : पद्मावती की दयनीय स्थिति का ब्यौरा

....

....

पद्मावती के बाहरी रूप का चित्रण

....

....

पद्मावती की निर्धनता को भी साथ में जोड़ा गया है।

....

....

विशेष : पद्मावती के संदर्भ में उक्त कथन का अभिप्राय

..

..

भाषा

....

....

शैली

....

....

(अन्य)

....

2) पद्मावती ने आँसू छलछलाती आँखों के जल को एकदम आत्मस्थ कर लिया। देखा, सामने गंगासिंह हेडमास्टर भी खड़ा है। पद्मावती एकदम विकट स्वर में चिल्ला उठी- "चुप रह, ओ खसिणी! मैं कोई तुझ-जैसी तिघिरिया पातर नहीं हूँ! नया कलश नहीं मिल सकता है कहती है, रॉड ! अरी, तू ही ढूँढ़ती रह, तुझे ही मुबारक हों नये-नये खसम ! ......मैं तुझ-जैसी कमनियत खसिणी नहीं हूँ-पतिव्रता ब्राह्मणी हूँ। तू मत रोना जब तेरा खसम भी मरे तो। कसम है तुझे तेरी ही औलाद की.....!

संदर्भ : (कहानी और लेखक के नाम का उल्लेख)

प्रसंग : (कहानी में जिस संदर्भ में कहा गया है, उस स्थिति का संक्षेप में विवरण)

....

....

पद्मावती के पतिरूप कलश का पिचक जाना।

व्याख्या : पद्मावती का उस कलश को अपना पति ही मान लेना।

....

....

पद्मावती के बाहरी रूप का चित्रण

....

....

पद्मावती की निर्धनता को भी साथ में जोड़ा गया है।

....

....

विशेष : पद्मावती के संदर्भ में उक्त कथन का अभिप्राय

....

....

भाषा

....

....

शैली

....

....

(अन्य)

....

उद्धरण :3) पद्मावती तब भी जानती थी, कमलावती बोज्यू के मुँह से उनकी कितनी आंतरिक-व्यथा बोलती है। ब्राह्मण-कन्या तो पैसेवालों की भी बहुत परेशानियों के बाद ही ब्याही जाती है, वह तो एक दरिद्र परिवार की कन्या थी और कुरूपा। गोरे कपाल में तो काजल का टीका भी बहुत फबता है, मगर काले कपाल की रेखाएँ तो चन्दन के तिलक से भी उजली नहीं हो पाती हैं। सोने-चाँदी के आसन पर तो शालिग्राम भी पूजा जाता है, मगर दान-दहेज से रीती उस सूखे काठ-जैसी काया को कौन देगा अपने घर में बहू का आसन।

संदर्भ : उपर्युक्त पंक्तियाँ श्री शैलेश मटियानी द्वारा रचित कहानी 'सुहागिनी' से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग :

व्याख्या :

विशेष :

11.7 सारांश

इस इकाई में आपने कहानीकार 'शैलेश मटियानी' के व्यक्तित्व और कृतित्व की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की तथा उनकी सुहागिनी कहानी का वाचन कर लिया है। आपने वाचन

करते समय इसमें प्रयुक्त कठिन शब्दों के अर्थ जाने और उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवेश की जानकारी प्राप्त की। अब आप इसकी भाषा-शैली और कथ्य से परिचित हो गए हैं। कहानी में वर्णित विविध घटनाओं के माध्यम से आप कहानी की मूल संवेदना से परिचित हुए हैं। आपने इसमें कुछ विशेष अंशों की व्याख्या का पाठ किया है। इसके बाद आप विशेष प्रसंगों की स्वयं व्याख्या करने में सक्षम होंगे।

11.8 शब्दावली

- कठबाड़ : लकड़ी का घेरा या चौहद्दी
- ललीज्यू/लली : ननद
- छणछणाट : कंसे के बर्तन में पानी की बूंदें गिरने की ध्वनि स्वर
- पाँत : पंक्ति
- दीठ : नजर, दृष्टि
- शकुन-आंखर : मंगलगीत।
- बौराणाज्यू : बहूरानी।
- छिः हाड़ी : दुरदुराना।
- खसिया / खसिणी : क्षत्रियों के लिए एक सम्बोधन।
- टमटा : ताँबे के बरतन बनाने-बेचने वाले।
- बालसंन्यासिनी : ऐसी लड़की जिसने बचपन में ही संन्यास ले लिया हो।
- रहट : कुएं से पानी निकालने का यंत्र ।
- सुआ : तोता ।
- अन्तर्गुहा : हृदय का अन्तरतम।
- अवसन्न : व्यथित, पीड़ित।
- शालिग्राम : भगवान विष्णु।
- पातर : वेश्या
- कदलीपत्रों की पालकी: केले के पत्तों से बना भगवान का आसन।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. **ग**

2. **ख**

3. **ख**

4. पद्मावती को विवाह के लिये बाध्य करने वाले भाई के कथन को लिखिये।

उ0 (स्वयं ढूंढें)

5. कमलावती पद्मावती के ताम्रकलश में पानी इसलिए नहीं भरती क्योंकि ताम्रकलश पद्मावती के सुहाग का प्रतीक है और उसमें कोई अन्य जल नहीं भर सकता।

6. बीमारी में भी पद्मावती ताम्रकलश में पानी भरने इसलिए जाती है क्योंकि उसे लगता है कि न जाने किस जन्म में पति को क्लेश पहुँचाया होगा, इस जनम में यह गति है। इस जनम में भी सेवा नहीं हो पाई तो फिर कैसे तारण होगा!

7. **ग**

8. 1. शुरू-शुरू में ताँबे का कलश विद्रूप लगता था, मगर एक दिन जब छोटे भतीजे ने उसमें पेशाब कर दी और कमलावती बोज्यू ने उपेक्षापूर्वक हँसते हुए बात टाल दी, तो एकाएक पद्मावती की आत्मा उत्तेजित हो उठी थी-"तुम्हारे लिए यह सिर्फ ताँबे का कलश ही होगा, बोज्यू, मगर मेरे लिए तो मेरा सुहाग भी है!''

2. टूट-टूट रही थी देह, मगर फिर भी पद्मावती उठ गई कि आज आठवां दिन लग गया है। ज्यों-त्यों भरकर रखना ही होगा नया जल। न जाने किस जनम पति को क्लेश पहुँचाया होगा, इस जनम में यह गति है। इस जनम में भी सेवा नहीं हो पाई तो फिर कैसे तारण होगा!

(ऐसे ही कुछ अन्य उद्धरण आप पाठ में से और भी ढूंढें।)

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मटियानी, शैलेश, सुहागिनी तथा अन्य कहानियां
2. प्रभाकर, श्रोत्रिय ,अर्द्धांगिनी : स्मृति और यथार्थ की सहयात्री, 234 पृष्ठ
3. पहाड़-13, 2001, परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल।
4. आजकल ; अक्टूबर २००१

11.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी।
2. यादव, राजेन्द्र, एक दुनिया समानान्तर, सम्पादक:, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. नई कहानी:प्रकृति और पाठ, सम्पादक: श्री सुरेन्द्र।
4. विकल्प कथा साहित्य विशेषांक , विकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद।

11.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सुहागिनी कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण करते हुए कथावस्तु की विशेषताएँ बताइये।
2. सुहागिनी कहानी के आधार पर पद्मावती का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. सुहागिनी की भाषागत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. सुहागिनी की शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. सुहागिनी की कथावस्तु बताते हुए शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता सिद्ध कीजिए।
6. कहानी के तत्वों के आधार पर समग्रता में कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 12 - सुहागिनी : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 कथानक

12.4 पात्र

12.5 परिवेश

12.6 संरचना-शिल्प

12.6.1 शैली

12.6.2 भाषा और संवाद

12.7 मूल्यांकन

12.8 सारांश

12.9 शब्दावली

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने सुहागिनी कहानी का वाचन किया। इसमें आपका सुहागिनी की कथा तथा उसमें व्यक्त भावों से परिचय हुआ। इससे आपको स्पष्ट हो गया होगा है कि कहानीकार इस कहानी के माध्यम से क्या कहना चाहता है और क्यों कहना चाहता है। वह जो कहना चाहता है, उसके लिये ही वह कथा की रचना करता है। कथा के पात्र काल्पनिक हो सकते हैं, लेकिन उनकी संवेदनायें, परिस्थितियाँ और परिवेश वास्तविक है। आपने इस सत्य को अनुभूत किया।

किसी भी रचना का मूल्यांकन इस तथ्य से होता है कि वह अपनी बात कहने में कहाँ तक सफल हुआ है। इसका निर्धारण उसके प्रस्तुतीकरण से होता है। प्रस्तुतीकरण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कहानी के तत्वों की कसौटी पर वह कितनी खरी है। प्रस्तुत इकाई में सुहागिनी का कहानी के तत्वों के आधार पर विश्लेषण किया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद सुहागिनी कहानी का तात्विक विवेचन करने में सक्षम होंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे।
- कहानी के पात्रों का चरित्र-चित्रण कर सकेंगे।
- कहानी के परिवेश और पृष्ठभूमि का अंकन कर सकेंगे।
- कहानी की भाषागत विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- कहानी की शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- कहानी के प्रतिपाद्य और कहानीकार की दृष्टि का विश्लेषण कर सकेंगे।
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता सिद्ध कर सकेंगे।
  समग्रता में कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।

12.3 कथानक

कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिये कथावस्तु का होना अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं - आरम्भ, विकास, चरम स्थिति एवं परिणति। सुहागिनी **कहानी का आरंभ**- सुवा रे, ओ सुवा!/बनखण्डी रे सुवा!/हरियो तेरो गात,/पिंङलो तेरो ठूना-/बन खण्डी रे, सुवा! विवाह के समय आमंत्रण की पंक्तियों के साथ होता है। प्रसंग पद्मावती के विवाह का है। विवाह की तैयारियाँ चल रही हैं, लेकिन विवाह का उत्साह कहीं नहीं दिखाई देता है। कमलावती बोज्यू रोली-अक्षत भिगो रही थीं जिनमें पानी से अधिक मात्रा आँसुओं की थी। पद्मावती की आँखों में भविष्य के सुनहरे स्वप्नों के स्थान पर गहरी उदासी और विवशता का भाव है क्योंकि पद्मावती का विवाह किसी पुरुष के साथ नहीं वरन् घड़े के साथ हो रहा है। भाई को डर है कि कहीं बहन का विवाह न कर पाने के कारण पाप का भागी न बनना पड़े। यह विवाह मजबूरी मात्र है। **कहानी का विकास** धटना के विकास के साथ नहीं वरन् पुरानी स्मृतियों के साथ होता है जिनमें कहीं पद्मावती की भाभी का यह कथन कि 'लली, बहुत शकुन गाती हो तुम।......और इतनी मधुर मीठी आवाज में कि लगता है, तुम सिर्फ शकुन गाने के लिए ही जन्मी हो, सुनने के लिए नहीं! या फिर गंगासिंह हेडमास्टर का आसक्ति के साथ-घूरना, बातों में सार्थकता बोध सुख अनुभूत करने के बावजूद आत्म प्रताड़ना का भाव। पद्मावती का हाथ पकड़ने की कोशिश करने पर अपना हाथ छुड़ा लेना तथा तबसे गंगासिंह का 'बौराणज्यू'

'बौराणाज्यू' कहकर बातें करना बंद कर देना आदि घटनाओं के माध्यम से कथानक का विकास होता है। उपर्युक्त घटनाओं का स्मरण कहानी की मूल सवेदना को **चरम** पर पहुँचा देता है जिसकी **चरम परिणति** ताम्रकलश के साथ विवाह के बाद उसे एकदम हाड़मांस का पति मान लेने की घटनाओं के रूप में होती है। वह न केवल उसकी सेवासुश्रूषा करने लगती है वरन् अपने सधवा होने और पतिव्रता होने का भाव मुखर रूप से व्यक्त करती है। यह पद्मावती के जीवन की विडम्बना और त्रासद परिणति है। पति का वास्तविक सुख उसे प्राप्त नहीं होता लेकिन विवाह का आडम्बर उसे स्वयं को विवाहित मान लेने का भ्रम जरूर दे देता है। यही पद्मावती के जीवन की विडम्बना भी है और परिणति भी है।

अभ्यास प्रश्न

1 .निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (☐) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

क) पद्मावती की आँखों में भविष्य के सुनहरे स्वप्न हैं। ( )

ख) पद्मावती ताम्रकलश के साथ विवाह के बाद उसे एकदम हाड़मांस का पति मान लेती है। ( )

ग) पद्मावती अपने सधवा होने और पतिव्रता होने का भाव मुखर रूप से व्यक्त करती है ( )

12.4 पात्र चरित्र-चित्रण

कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण-दोष को उनका 'चरित्र चित्रण' कहा जाता है। चरित्र कथा के विकास और संवेदना को मुखर करने में सहायक होते हैं। कहानी में चरित्रों की संख्या सीमित तथा सोद्देश्य होनी चाहिए और यह भी आवश्यक है कि उनमें स्वाभाविकता हो। पद्मावती 'सुहागिनी' की नायिका है। सारी कहानी उसी के इर्द-गिर्द घूमती है। लेकिन पद्मावती के चरित्र को समझने के लिये कहानी के अन्य चरित्रों को समझना भी नितांत जरूरी है। इनमें पद्मावती की भाभी, भाई, गंगासिंह हेडमास्टर, गंगासिंह हेडमास्टर की पत्नी हैं। ये सभी पात्र पद्मावती के चरित्र एवं कथा-विकास में सहायक हैं।

पद्मावती : पद्मावती सुहागिनी की कहानी का मुख्य पात्र है। माता-पिता की मृत्यु के बाद वह अपने भाई के साथ रह रही है। भाई का अपना परिवार है, बच्चे हैं। पद्मावती सुन्दर भी नहीं है और परिवार विपन्न है, जिस कारण उसका विवाह नहीं हो पाता। **रंग एकदम साँवला, आँखे एकदम मिचमिची और देह सूखी हुई।** अभी वह अधेड़ उम्र की हो गई है लेकिन युवावस्था में भी पद्मावती सुन्दर नहीं थी। पद्मावती गाती बहुत अच्छा थी। विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत- शकुनाँखर गाने में उसका कोई जोड़ नहीं है। कण्ठ इतना सुरीला कि **सात-सात शकुन आँखर गानेवाली बैठी हों, तो उसका सातवाँ सुर सबसे अलग ऐसा गूँजता था कि और गानेवालियों की आवाजें उनकी ईर्ष्या ओर कुण्ठा से और भी भद्दी लगने लगती थीं।** हिन्दु ब्राह्मण परिवार के अनुरूप चरित्र पर बहुत ध्यान है। इसके लिये वह अपनी स्वाभाविक भावनाओं को दबाती है। **गंगासिंह हेडमास्टर जब आसक्ति के साथ-घूरता बातें करता है, इससे एक सार्थकता का बोध सुख अवश्य देता था, मगर आत्मा प्रताड़ित**

करने लगती थी कि कहीं तीन-तीन शादियों के होते भी एकदम कुँवारे छोकरों की तरह आँखें भुर-भुरानेवाला हेडमास्टर अपने अपर स्कूल की सरहद से बहुत आगे तक न बढ़ आये! इसीलिये जब एक दिन वह पद्मावती का हाथ पकड़ने की कोशिश करता है, तब वह **हट साले खसिया!'** कहकर अपना हाथ छुड़ा लेती है। इस तरह अपनी स्वाभाविक इच्छा को दबाती है। पद्मावती की यह कुंठा बार-बार नजर आती है। जब पति रूपी ताम्रकलश पिचक जाता है और वह विलाप कर रही होती है उस समय गंगासिंह हेडमास्टर की पत्नी का कहना- **''एक ताँबे की टिटरी के लिए ऐसा करूण विलाप करते हुए शरम भी नहीं आ रही है पद्मा बौराणाज्यू को ! अरे, यह फूट गया है, तो क्या दूसरा नया कलश नहीं मिल सकता बाजार में''** के जवाब में **पद्मावती एकदम विकट स्वर में चिल्ला उठी-''चुप रह, ओ खसिणी! मैं कोई तुझ-जैसी तिघिरिया पातर नहीं हूँ! नया कलश नहीं मिल सकता है कहती है, राँड ! अरी, तू ही ढूँढ़ती रह, तुझे ही मुबारक हों नये-नये खसम ! ......मैं तुझ-जैसी कमनियत खसिणी नहीं हूँ-पतिव्रता ब्राह्मणी हूँ। तू मत रोना जब तेरा खसम भी मरे तो। कसम है तुझे तेरी ही औलाद की.....!** में पद्मावती की यही कुण्ठा व्यक्त हुई है। पद्मावती का चरित्र स्त्री की उस कारुणिक दशा को मुखर करता है जिसमें धर्म,समाज,पारिवारिक और पारम्परिक मान्यतायें उसके स्वाभाविक जीवन के मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। उम्र के साथ-साथ परिस्थितियों के बदलाव के अलावा पद्मावती के चरित्र में कोई परिवर्तन नजर नहीं आता है। लेखक ने घटविवाह की परम्परा के परिप्रेक्ष्य में स्त्री की सामाजिक स्थिति तथा उससे प्रभावित स्त्री मनोविज्ञान को मुखरित करने के उद्देश्य से पद्मावती का चरित्रांकन किया है।

अभ्यास प्रश्न

2.नीचे बताई गई घटनाएँ पद्मावती के चरित्र के किस-किस पहलू को उजागर करती है।

क) गंगासिंह मास्टर को 'हट साले खसिया' कहना

ख) ताम्रकलश पर मौसमी फूलों या पीपल के पत्तों का गुच्छा रखना

कमलावती (पद्मावती की भाभी) **:** पद्मावती की भाभी प्रौढ़ वय की घरेलू महिला हैं। निर्धन परिवार में बच्चों , बीमार पति और अधेड़ आयु की अविवाहित ननद पद्मावती के साथ परिवार चला रही है। पद्मावती के प्रति उनका स्नेहभाव है। वह जब कहती है- **'' लली, बहुत शकुन गाती हो तुम।......और इतनी मधुर मीठी आवाज में कि लगता है, तुम सिर्फ शकुन गाने के लिए ही जन्मी हो, सुनने के लिए नहीं!** तब इसमें उनका दर्द ही व्यक्त होता है। ऐसे ही पद्मावती के विवाह के समय **कमलावती बोज्यू बार-बार कदलीपत्रों की पालकी में बैठे बरदेवता श्री रामचन्द्र को टुकुर-टुकुर देखती हैं और उनके आँसू, एकबारगी छलछलाकर कॉसे की थाली में गिरते हैं और लगता है, रोली-अक्षत एकाकार हो गए हैं!**

बुद्धिबल्लभ (पद्मावती के भाई) **:** पद्मावती प्रौढ़ावस्था में यह विवाह, जो मन में वितृष्णा जगाने वाला भी है, करना नहीं चाहती, लेकिन भाई की व्यथा उसे यह विवाह करने के लिये बाध्य करती है। बुद्धिबल्लभ धर्मभीरू ब्राह्मण है। बहन से स्नेह तो है लेकिन पद्मावती का विवाह

नहीं कर पाने से दुखी है, विवशता का भाव है। इससे भी बड़ा भय है परलोक बिगड़ने का उनका यह कथन उनके पूरे चरित्र को स्पष्ट कर देता है- **'पद्मा, मेरा अन्त समय आ गया है। बहुतों की सद्गति करके उनका तारण मैंने किया है, मगर अब मुझे अपना ही तारण दुर्लभ हो रहा है। तेरा भाई-पिता जो-कुछ हूँ मैं ही अभागा दरिद्र ब्राह्मण हूँ, पद्मा! मैं अभागा अपने भाई का धर्म नहीं निभा सका, मगर तू तो कल्याणी कुललक्ष्मी है ! तू अपनी दया निभा दे। तुझे सुहागिन देखने से मेरा तारण हो जायेगा।.....लली, इतना मैं भी समझता ही हूँ कि ताँबे का कलश सुहाग के कंकण-मंगलसूत्र ही दे सकता है, सुहाग का सुख नहीं दे सकता मगर........**उनका यही कथन पद्मावती को इस उम्र में कौतुकपूर्ण विवाह करने के लिये विवश करता है।

गंगासिंह हेडमास्टर: गंगासिंह पद्मावती के ही गांव का अधेड़ उम्र का व्यक्ति है। जो तीन विवाह कर चुका है। वही एकमात्र पुरुष है जो बड़ी आसक्ति के साथ-घूरता बातें करता है जो पद्मावती को एक सार्थकता का बोध सुख अवश्य देता था। पूरी कहानी में गंगासिंह हेडमास्टर दो बार सामने आता है। एक बार तब जब !.....**सो एक दिन पद्मावती का हाथ पकड़ने की कोशिश की तो 'हट साले खसिया!' कहकर पद्मा ने अपना हाथ छुड़ा लिया था** और एक बार जब गंगासिंह हेडमास्टर की पत्नी ताम्रकलश के पिचक जाने पर कहती है **अरे, यह फूट गया है, तो क्या दूसरा नया कलश नहीं मिल सकता बाजार में''**

पद्मावती ने आँसू छलछलाती आँखों के जल को एकदम आत्मस्थ कर लिया। देखा, सामने गंगासिंह हेडमास्टर भी खड़ा है। जिसे देखकर पद्मावती की प्रतिक्रिया और भी तेज हो जाती है। इस तरह हम पाते हैं कि गंगासिंह का चरित्र पद्मावती की दमित भावना को और अधिक तीव्र कर देता है।

गंगासिंह हेडमास्टर की पत्नी : यह केवल एक बार कहानी में आती है, जब पद्मावती ताम्रकलश के पिचक जाने पर विलाप कर रही होती है। उसे पद्मावती का यह विलाप अशोभन प्रतीत होता है। वह कहती है कि नया कलश ले लो । इस पर पद्मावती बिफर उठती है। अपने को वह एकनिष्ठ पतिव्रता सिद्ध करती हुई गंगासिंह की पत्नी पर चरित्रहीन होने तक का आरोप लगा देती है। तिघरिया होने का ताना देती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विवेचित कहानी की कथानायिका पद्मावती है। पद्मावती का चरित्र एक ओर स्त्री की दयनीय दशा पर प्रकाश डालता है दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार करता है। कहानी के अन्य सभी चरित्र भी इसे ही पुष्ट करते हैं। पात्रों की संख्या सीमित है, लेकिन कहानी के विकास और मूल संवेदना को व्यक्त करने में सक्षम है।

12.5 परिवेश

कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। शैलेश मटियानी की सुहागिनी स्वतंत्रता के बाद की कहानी है। स्वतंत्रता के बाद की कहानियों में विषयवस्तु के हिसाब से एक स्पष्ट वर्गीकरण महानगरीय, शहरी एवं ग्रामीण

बोध का दिखाई देता है। शैलेश मटियानी की अधिकांश कहानियाँ ग्रामीण परिवेश से जुड़ी हुई है। इस कहानी की पृष्ठभूमि उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के अल्मोड़ा जिले के एक गांव की है। जहाँ अभी भी पारम्परिक मान्यतायें अपना स्थान बनाये हुए हैं। अपने सीमित परिवेश के कारण कहानी में वर्णित कुमाऊँनी पृष्ठभूमि में आंचलिकता अधिक मुखर हो उठी है,जो इसकी विशेषता भी है। इसके साथ श्री प्रभाकर श्रोत्रिय का यह कथन अक्षरक्ष: लागू होता है -" शैलेश की कहानी में पहाड़ की वीरानी, विशिष्ट किस्म के संकट, समस्याएं, सहजता, प्रेम, उदासीनता, सुख-दुख, खास तरह की कर्मण्य दार्शनिकता, प्राकृतिक वैभव, जीवन-शैलीआदि एक स्तर पर स्थानीय ठंग से उभरते हैं, लेकिन एक अन्य स्तर पर इतने वृहदीकृत और सार्वजनीन हो उठते हैं, मानों वे मनुष्य-मात्र के संवेदन-संघर्ष हों।" सुहागिनी में इन सभी भावों का मूर्तरूप दिखाई देता है। परिवेश विशेष को केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानियों को आंचलिक कहानियों की श्रेणी में रखा जाता है। इस दृष्टि से शैलेश मटियानी की विवेच्य कहानी को भी आंचलिक कहानी की श्रेणी में रखा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

3. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

क)बुद्धिबल्लभ .... ब्राह्मण है। (प्रकाण्ड /धर्मभीरू)

ख)शैलेश मटियानी की अधिकांश कहानियाँ .... परिवेश से जुड़ी हुई है। (शहरी/ग्रामीण)

ग)कहानी की पृष्ठभूमि....................... है। (कुमाऊँनी / गढ़वाली)

12.6 संरचना-शिल्प

संरचना शिल्प के अन्तर्गत यहाँ शैली, संवाद और भाषा पर विचार करेंगे। कहानी में जितना महत्व कथा का होता है उतना ही उसके प्रस्तुतीकरण का भी होता है। कहानी की विषयवस्तु, परिवेश तथा कहानी की मूल संवेदना के अनुरूप उसकी भाषा, शैली भी होती है।

12.6.1 शैली :-

प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। सुहागिनी की शैली वर्णनात्मक है। कहानी में एक घटनाक्रम चलता रहता है और उसके साथ-साथ उस घटना से जुड़ी कोई याद भी चलती रहती है। इससे कहानी की मार्मिकता बढ़ जाती है। यह कहानी के कथ्य के अनुरूप ही है। कहानी में पूर्वदीप्ति शैली चमत्कार पैदा करती है। कहीं इसका प्रयोग कथा का विकास करता है, कहीं भावों को उद्दीप्त करता है और कहीं घटनाक्रम की संगति-विसंगति को प्रभावशाली ढंग से उजागर करता है। प्रस्तुत कहानी में पुरानी स्मृतियों का प्रभावशाली उपयोग हुआ है। कथ्य के अनुरूप शैली का प्रयोग हुआ है। इससे कहानी अधिक प्रभावशाली हो गई है।

12.6.2 भाषा और संवाद :-

कहानी का दूसरा मुख्य आधार है, भाषा। वर्णन और संवाद दोनों ही जगह भाषा की सृजनात्मकता कहानी की सम्प्रेषणीयता को बढ़ाती है। प्रस्तुत कहानी में शैलेश मटियानी की भाषा कथ्य के अनुरूप अत्यंत प्रभावशाली है। भाषा में चित्रात्मकता है। घटकलश के साथ पद्मावती का विवाह प्रसंग हो अथवा इस ताम्रकलश के पिचक जाने पर पद्मावती का करुण प्रलाप या फिर गंगासिंह हेडमास्टर का पद्मावती से चुहल करना, सभी प्रसंगों का वर्णन पाठक के सामने एक सजीव चित्र का बिम्ब बना देते हैं। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। ऐसे ही जो संवाद हैं उनकी भाषा भी पात्रों तथा समय के अनुकूल है। कहानी का परिवेश और कथ्य बहुत अधिक विस्तृत नहीं है, इसीलिये पात्रों की भाषा में बहुत अधिक वैविध्य नहीं है। पात्रों के के चरित्र और मानसिकता को उजागर करते हैं-

पद्मावती के भाई के चरित्र और विवशता को यह एकमात्र कथन पूरी तरह से अभिव्यक्त कर देता है-

'पद्मा, मेरा अन्त समय आ गया है। बहुतों की सद्गति करके उनका तारण मैंने किया है, मगर अब मुझे अपना ही तारण दुर्लभ हो रहा है। तेरा भाई-पिता जो-कुछ हूँ मैं ही अभागा दरिद्र ब्राह्मण हूँ, पद्मा! मैं अभागा अपने भाई का धर्म नहीं निभा सका, मगर तू तो कल्याणी कुललक्ष्मी है ! तू अपनी दया निभा दे। तुझे सुहागिन देखने से मेरा तारण हो जायेगा।.....लली, इतना मैं भी समझता ही हूँ कि ताँबे का कलश सुहाग के कंकण-मंगलसूत्र ही दे सकता है, सुहाग का सुख नहीं दे सकता मगर........ इसी के प्रतिक्रियास्वरूप पद्मावती का कहना और प्रतिक्रिया -**''बोज्यू, इस वृद्धावस्था में मुझे सुहागिन बना दो !''......और एकदम भरने के बाद ओंधी पड़ी ताँबे की कलशी-जैसी छलछलाती ही चली गई थी, बिलखती ही गई थी-हे राम!हे राम! हे राम!** बहुत ही प्रभावशाली संवाद है जिसमें भाई की व्यथा की अनुभूति, पद्मावती की वृद्धावस्था में विवाह वह भी ताँबे के कलश के साथ, की विवशता का भाव,प्रस्तुत कथन में अभिव्यक्त हुआ है। ओंधी पड़ी कलशी से तुलना और बिलखना ही -**हे राम!हे राम! हे राम!** इसे और भी मार्मिक बनाते हुए पद्मावती के मनोभावों को एकदम सजीव कर देता है। इसी प्रकार कमलावती बोज्यू का यह कथन **'लली, बहुत शकुन गाती हो तुम।......और इतनी मधुर मीठी आवाज में कि लगता है, तुम सिर्फ शकुन गाने के लिए ही जन्मी हो, सुनने के लिए नहीं!** जैसे पद्मावती का भाग्य ही बाँच देता है।

भाषा में विषय को हृदयग्राही बनाने की क्षमता दृष्टिगोचर हुई है। इसमें स्वाभाविक रूप से काव्यात्मकता आ गई है।

कहानी की पृष्ठभूमि कुमाऊँ क्षेत्र की होने के कारण भाषा में कुमाऊँनी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग मिलता है। ललीज्यू, लली, छणछणाट, पाँत, दीठ, शकुन-आंखर बौराणाज्यू, छिः हाड़ी, खसिया, खसिणी आदि शब्द इसी अंचल की भाषा के हैं। सामान्यत: शुद्ध

संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है, लेकिन भाषा सुबोध और सुगम है। कहीं-कहीं अपभ्रंश- लाज-शरम और उर्दू के लफन्दर, खसम जैसे शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

अभ्यास प्रश्न

4. सुहागिनी कहानी में शैली का क्या महत्व है? बताइए।

....

....

....

....

....

5.कहानी में प्रयुक्त कुमाऊँनी के पाँच शब्द चुनिए और उनके अर्थ लिखिए।

....

....

....

....

....

6. मैं तुझ-जैसी कमनियत खसिणी नहीं हूँ-पतिव्रता ब्राह्मणी हूँ। तू मत रोना जब तेरा खसम भी मरे तो। कसम है तुझे तेरी ही औलाद की.....!

उपर्युक्त संवाद की भाषागत विशेषताएँ बताइये।

....

....

....

....

....

....

....

12.7 मूल्यांकन

कहानी के विश्लेषण के बाद उसका मूल्यांकन करना आसान हो जाता है। यहाँ मूल्यांकन का तात्पर्य कहानी के बारे में कोई निर्णय देना नहीं वरन् लेखक की दृष्टि, प्रतिपाद्य और शीर्षक की उपयुक्तता पर विचार करना है।

रचनाकार की दृष्टि और कहानी का प्रतिपाद्य सुहागिनी कहानी का कथ्य पद्मावती के बड़ी उम्र तक अविवाहित रह जाने पर धार्मिक मान्यता के अनुसार विवाह अनिवार्य होने के कारण ताम्रकलश के साथ विवाह पर आधारित है। विवाह न हो पाना अपने में ही एक अभाव

का द्योतक है, उस पर घड़े के साथ विवाह विद्रूपता को उभारता है। पूरे रीति-रिवाजों के साथ एक कल्पना पुरुष के साथ विवाह करना कितना त्रासद है, इसकी सघन अनुभूति होती है। लेखक ने बहुत गहराई से इस सामाजिक विसंगति को उभारा है कि सामाजिक विपन्नता जहाँ किसी कन्या का विवाह न होने का कारण हैं वहीं धार्मिक दृष्टि से विवाह होना नितांत आवश्यक है। पाप का भागी बनने से बचने और मोक्ष प्राप्ति के लिए हिन्दू कन्या का विवाह आवश्यक है। कहानी केवल मनोरंजन अथवा कथा कहने के लिए नहीं होती, उसका एक निश्चित उद्‌देश्य भी होता है। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से हमारी धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक विषमताओं को उजागर किया गया है। सामाजिक रीति रिवाज तथा मान्यताओं की बेडियों में जकड़े समाज की विद्रूपता को उभारा गया है। जाति, धर्म और लिंगभेद को रेखोकित करती कहानी यह सोचने को विवश करती है कि किस प्रकार इनके कारण हमारा समाज विकारग्रस्त हो रहा है। पद्मावती उच्च ब्राह्मण किन्तु दरिद्र कुल में जन्म लेने और सुंदर न होने से नैतिकता और धर्म के बंधन के कारण स्वाभाविक जीवन नहीं जी पाती, कुंठित हो जाती है। उसकी यह कुंठा ताम्रकलश को पतिरूप में मानते हुए तरह-तरह की कल्पनाओं और अपने सतीत्व और पतिव्रता होने के झूठे दम्भ के रूप में दिखाई देती है। इसे उजागर करना ही कहानी का मुख्य उद्देश्य है जिसमें मटियानी जी पूर्णतया सफल हुए हैं।

कहानी का शीर्षक 'सुहागिनी' कहानी के मूल तथ्य के अनुरूप है। हमारी सामाजिक मान्यताओं में स्त्री का सुहागिन होना सम्मान का प्रतीक माना जाता है। जिसका विवाह न हुआ हो अथवा जिसके पति की मृत्यु हो गई हो उन्हें कमतर माना जाता है। सुहागिन स्त्री को पति की मान मर्यादा, संरक्षण और सुख प्राप्त होता है। लेकिन विवेच्य कहानी में पद्मावती को इनमें से कुछ भी प्राप्त नहीं है, मात्र सुहागिन होने का नाम है। कहानी का शीर्षक इसी विडम्बना को उजागर करता है।

12.8 सारांश

- इस इकाई के अध्ययन के बाद कहानीकार 'शैलेश मटियानी' की कहानी 'सुहागिनी' का तात्विक विवेचन कर सकते हैं। अब आप कहानी की कथावस्तु की विशेषतायें समझ गए हैं। अत: आप कथ्य के आधार पर कहानी का विश्लेषण कर सकते हैं।
- कहानी के पात्रों, परिवेश, कहानी की भाषागत शिल्पगत विशेषताओं, कहानी के प्रतिपाद्य और कहानीकार की दृष्टि पर प्रकाश डाल सकते हैं।
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।
- उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर समग्रता में कहानी का मूल्यांकन कर सकते हैं।
- साहित्यिक दृष्टि से कहानी का महत्व बता सकते हैं।

12.9 शब्दावली

- कठबाड़ : लकड़ी का घेरा या चौहद्दी
- ललीज्यू/लली : ननद
- छणछणाट : कांसे के बर्तन में पानी की बूंदें गिरने की ध्वनि स्वर
- पाँत : पंक्ति
- दीठ : नजर, दृष्टि
- शकुन-आंखर : मंगलगीत।
- बौराणाज्यू : बहूरानी।
- छिः हाड़ी : दुरदुराना।
- खसिया/खसिणी : क्षत्रियों के लिए एक सम्बोधन।
- टमटा : ताँबे के बरतन बनाने-बेचने वाले।
- बालसंन्यासिनी : ऐसी लड़की जिसने बचपन में ही सन्यास ले लिया हो।
- रहट : कुएं से पानी निकालने का यंत्र ।
- सुआ : तोता ।
- अन्तर्गुहा : हृदय का अन्तरतम।
- अवसन्न : व्यथित, पीड़ित।
- शालिग्राम : भगवान विष्णु।
- पातर : वेश्या
- कदलीपत्रों की पालकी: केले के पत्तों से बना भगवान का आसन।
- सम्प्रेषणीयता : समझ में आने योग्य विचार
- खसम : पति
- घटविवाह : घड़े के साथ विवाह किए जाने की परम्परा
- सार्वजनीन : सब लोगों का
- वृहदीकृत : विस्तृत रूप में
- संवेदन-संघर्ष : सम्वेदना के स्तर पर संघर्ष
- अक्षरक्ष : पूर्णतया

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क) (×)
ख) (□)
ग) (□)

2. क) ऊपरी रूप में स्वयं को सात्विक ब्राह्मणी के रूप में श्रेष्ठ मानने का भाव है पर भीतर ही भीतर लम्बी उम्र तक अविवाहित रह जाने की कुण्ठा और बेबसी है।
ख) मौसमी फूलों या पीपल के पत्तों का गुच्छा ताम्र-कलश के ऊपर इसलिए रखने लगी थी, ताकि कौवों की चोंच पानी तक न पहुँच सके, ताकि ताम्र-कलश की एकदम ऊपरी जल-परत पर उभरा हुआ मुखबिम्ब खण्डित न हो सके, जिसमें वह अपने कल्पनापुरुष के रूप को देखती है। इसमें भी अप्रत्यक्ष रूप से यह उसकी दमित भावनाओं का प्रतीक है।

3. क)धर्मभीरू
ख) ग्रामीण
ग) कुमाऊँनी

4. सुहागिनी की शैली वर्णनात्मक है। कहानी में एक घटनाक्रम चलता रहता है और उसके साथ-साथ उस घटना से जुड़ी कोई याद भी चलती रहती है। इससे कहानी की मार्मिकता बढ़ जाती है। यह कहानी के कथ्य के अनुरूप ही है। कहानी में पूर्वदीप्ति शैली चमत्कार पैदा करती है। कहीं इसका प्रयोग कथा का विकास करता है, कहीं भावों को उद्दीप्त करता है और कहीं घटनाक्रम की संगति-विसंगति को प्रभावशाली ढंग से उजागर करता है। प्रस्तुत कहानी में पुरानी स्मृतियों का प्रभावशाली उपयोग हुआ है। कथ्य के अनुरूप शैली का पंयोग हुआ है। इससे कहानी अधिक प्रभावशाली हो गई है।

5. शब्द		**अर्थ**
ललीज्यू	-	ननद
छणछणाट	-	कांसे के बर्तन में पानी की बूंदें गिरने की ध्वनि
पाँत	-	पंक्ति
दीठ	-	नजर, दृष्टि
शकुन-आंखर	-	मंगलगीत

6. यह संवाद कहानी की सम्प्रेषणीयता को बढ़ाता है। आम बोलचाल की भाषा है। भाषा में चित्रात्मकता है। उर्दूमिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। कमनियत, खसम, औलाद और कसम उर्दू के शब्द हैं। प्रस्तुत अंश में शैलेश मटियानी की भाषा कथ्य के अनुरूप है।पद्मावती की कुंठा गंगासिंह की पत्नी को उलाहना और कोसना देने में व्यक्त हुई है। उसे कमनियत खसिणी

और जब तेरा खसम भी मरे कहना गालीसूचक है जो पद्मावती के चरित्र और मानसिकता को उजागर करता है।

12.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मटियानी, शैलेश, सुहागिनी तथा अन्य कहानियां
2 श्रोत्रिय प्रभाकर,अर्द्धांगिनी : स्मृति और यथार्थ की सहयात्री, 234 पृष्ठ,
3. पहाड़-13, 2001, परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल।

12.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, धनन्जय आज की हिन्दी कहानी।
2. सिंह, संतबख्श : नई कहानी कथ्य और शिल्प, अभिनव प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. सिंह, नामवर, कहानी : नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली इलाहाबाद।
4. यादव, राजेन्द्र, एक दुनिया समानान्तर, सम्पादक:, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. विकल्प कथा साहित्य विशेषांक , विकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद।

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सुहागिनी कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण करते हुए कथावस्तु की विशेषताएँ बताइये।
2. सुहागिनी कहानी के आधार पर पद्मावती का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. सुहागिनी की भाषागत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. सुहागिनी की शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. सुहागिनी की कथावस्तु बताते हुए शीर्षक की उपयुक्तता और सार्थकता सिद्ध कीजिए।
6. कहानी के तत्वों के आधार पर समग्रता में कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 13 - जैनेन्द्र कुमारः परिचय एवं कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 जीवन परिचय/रचनाएँ
13.3.1 जीवन परिचय
13.3.2 रचनाएँ
13.4 कृतित्व
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनेन्द्रकुमार (२ जनवरी, १९०५- २४ दिसंबर, १९८८) का विशिष्ट स्थान है। वह हिंदी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवर्तक के रूप में मान्य हैं। जैनेन्द्र अपने पात्रों की सामान्यगति में सूक्ष्म संकेतों की निहिति की खोज करके उन्हें बड़े कौशल से प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ इसी कारण से संयुक्त होकर उभरती हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में घटनाओं की संघटनात्मकता पर बहुत कम बल दिया गया है। चरित्रों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं के निर्देशक सूत्र ही मनोविज्ञान और दर्शन का आश्रय लेकर विकास को प्राप्त होते हैं।

13.2 उद्देश्य

एम.ए.एच.एल 201की यह 13वीं इकाई हैं। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- जैनेन्द्र कुमार के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- जैनेन्द्र कुमार के रचना संसार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- जैनेन्द्र कुमार के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।

- जैनेन्द्र कुमार साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों से परिचित हो सकेंगे।

13.3 जीवन परिचय/रचनाएँ

13.3.1 जीवन परिचय :-

जैनेन्द्र कुमार का जन्म २ जनवरी, सन १९०५, में अलीगढ़ के कौड़ियागंज गांव में हुआ। उनके बचपन का नाम आनंदीलाल था। इनकी मुख्य देन उपन्यास तथा कहानी के क्षेत्र में है। इसके अतिरिक्त एक साहित्य विचारक के रूप में भी आपका स्थान विशिष्ट है। इनके जन्म के दो वर्ष पश्चात इनके पिता की मृत्यु हो गई। इनकी माता एवं मामा ने ही इनका पालन-पोषण किया। इनके मामा ने हस्तिनापुर में एक गुरुकुल की स्थापना की थी। वहीं जैनेन्द्र की प्रारंभिक शिक्षा -दीक्षा हुई। उनका नामकरण भी इसी संस्था में हुआ। उनका घर का नाम आनंदी लाल था। सन १९१२ में उन्होंने गुरुकुल छोड़ दिया। प्राइवेट रूप से मैट्रीक परीक्षा में बैठने की तैयारी के लिए वह बिजनौर आ गए। १९१९ में उन्होंने यह परीक्षा बिजनौर से न देकर पंजाब से उत्तीर्ण की। जैनेन्द्र की उच्च शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हुई। १९२१ में उन्होंने विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़ दी और कांग्रेस के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के उद्देश्य से दिल्ली आ गए। कुछ समय के लिए ये लाला लाजपत राय के 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में भी रहे, परंतु अंत में उसे भी छोड़ दिया।

सन् १९२१ से २३ के बीच जैनेन्द्र ने अपनी माता की सहायता से व्यापार किया, जिसमें इन्हें सफलता भी मिली। परंतु सन् २३ में वे नागपुर चले गए और वहाँ राजनीतिक पत्रों में संवाददाता के रूप में कार्य करने लगे। उसी वर्ष इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और किन्तु तीन माह के बाद छूट गए। दिल्ली लौटने पर इन्होंने व्यापार से अपने को अलग कर लिया। जीविका की खोज में ये कलकत्ते भी गए, परंतु वहाँ से भी इन्हें निराश होकर लौटना पड़ा। इसके बाद इन्होंने लेखन कार्य आरंभ किया। २४ दिसंबर १९८८ को उनका निधन हो गया।

13.3.2 रचनाएँ :-

उपन्यास : 'परख' (१९२९), 'सुनीता' (१९३५), 'त्यागपत्र' (१९३७), 'कल्याणी' (१९३९), 'विवर्त' (१९५३), 'सुखदा' (१९५३), 'व्यतीत' (१९५३) तथा 'जयवर्धन' (१९५६), 'मुक्तिबोध'।

कहानी संग्रह : 'फाँसी' (१९२९), 'वातायन' (१९३०), 'नीलम देश की राजकन्या' (१९३३), 'एक रात' (१९३४), 'दो चिड़ियाँ' (१९३५), 'पाजेब' (१९४२), 'जयसंधि' (१९४९) तथा 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' (सात भाग)।

निबंध संग्रह : 'प्रस्तुत प्रश्न' (१९३६), 'जड़ की बात' (१९४५), 'पूर्वोदय' (१९५१), 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' (१९५३), 'मंथन' (१९५३), 'सोच विचार' (१९५३), 'काम, प्रेम और परिवार' (१९५३), तथा 'ये और वे' (१९५४)।

अनूदित ग्रंथ : 'मंदालिनी' (नाटक-१९३५), 'प्रेम में भगवान' (कहानी संग्रह-१९३७), तथा 'पाप और प्रकाश' (नाटक-१९५३)।

सह लेखन : 'तपोभूमि' (उपन्यास, ऋषभचरण जैन के साथ-१९३२)।

संपादित ग्रंथ : 'साहित्य चयन' (निबंध संग्रह-१९५१) तथा 'विचारवल्लरी' (निबंध संग्रह-१९५२)।

13.4 कृतित्व

जैनेन्द्र अपने पथ के अनूठे अन्वेषक थे। उन्होंने प्रेमचन्द के सामाजिक यथार्थ के मार्ग को नहीं अपनाया, जो अपने समय का राजमार्ग था। लेकिन वे प्रेमचन्द के विलोम नहीं थे, जैसा कि बहुत से समीक्षक सिद्ध करते रहे हैं, वे प्रेमचन्द के पूरक थे। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र को साथ-साथ रखकर ही जीवन और इतिहास को उसकी समग्रता के साथ समझा जा सकता है। जैनेन्द्र का सबसे बड़ा योगदान हिन्दी गद्य के निर्माण में था। भाषा के स्तर पर जैनेन्द्र द्वारा की गई तोड़-फोड़ ने हिन्दी को तराशने का अभूतपूर्व काम किया। जैनेन्द्र का गद्य न होता तो अज्ञेय का गद्य संभव न होता। हिन्दी कहानी ने प्रयोगशीलता का पहला पाठ जैनेन्द्र से ही सीखा। जैनेन्द्र ने हिन्दी को एक पारदर्शी भाषा और भंगिमा दी, एक नया तेवर दिया। आज के हिन्दी गद्य पर जैनेन्द्र की अमिट छाप है। जैनेन्द्र के प्रायः सभी उपन्यासों में दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों के समावेश से दूरूहता आई है परंतु ये सारे तत्व जहाँ-जहाँ भी उपन्यासों में समाविष्ट हुए हैं, वहाँ वे पात्रों के अंतर का सृजन प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि जैनेन्द्र के पात्र बाह्य वातावरण और परिस्थितियों से अप्रभावित लगते हैं और अपनी अंतर्मुखी गतियों से संचालित। उनकी प्रतिक्रियाएँ और व्यवहार भी प्रायः इन्हीं गतियों के अनुरूप होते हैं। इसी का एक परिणाम यह भी हुआ है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में चरित्रों की भरमार नहीं दिखाई देती। पात्रों की अल्पसंख्या के कारण भी जैनेन्द्र के उपन्यासों में वैयक्तिक तत्वों की प्रधानता रही है।

क्रांतिकारिता का तत्व भी जैनेन्द्र के उपन्यासों के महत्वपूर्ण आधार है। उनके सभी उपन्यासों में प्रमुख पुरुष पात्र सशक्त क्रांति में आस्था रखते हैं। बाह्य स्वभाव, रुचि और व्यवहार में एक प्रकार की कोमलता और भीरुता की भावना लिए होकर भी ये अपने अंतर में महान विध्वंसक होते हैं। उनका यह विध्वंसकारी व्यक्तित्व नारी की प्रेमविषयक अस्वीकृतियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप निर्मित होता है। इसी कारण जब वे किसी नारी का थोड़ा भी आश्रय, सहानुभूति या प्रेम पाते हैं, तब टूटकर गिर पड़ते हैं और तभी उनका बाह्य स्वभाव कोमल बन जाता है। जैनेन्द्र के नारी पात्र प्रायः उपन्यास में प्रधानता लिए हुए होते हैं। उपन्यासकार ने अपने नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है। स्त्री के विविध रूपों, उसकी क्षमताओं और प्रतिक्रियाओं का विश्वसनीय अंकन जैनेन्द्र कर सके हैं। 'सुनीता', 'त्यागपत्र' तथा 'सुखदा' आदि उपन्यासों में ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब उनके नारी चरित्र भीषण मानसिक संघर्ष की स्थिति से गुजरे हैं। नारी और पुरुष की अपूर्णता तथा अंतर्निर्भरता की

भावना इस संघर्ष का मूल आधार है। वह अपने प्रति पुरुष के आकर्षण को समझती है, समर्पण के लिए प्रस्तुत रहती है और पूरक भावना की इस क्षमता से आल्हादित होती है, परंतु कभी-कभी जब वह पुरुष में इस आकर्षण-मोह का अभाव देखती है, तब क्षुब्ध होती है, व्यथित होती है। इसी प्रकार से जब पुरुष से कठोरता के स्थान पर विनम्रता पाती है, तब यह भी उसे असह्य हो जाता है।

साहित्य की प्रचलित धाराओं के बरअक्स अपनी एक जुदा राह बनाने वाले जैनेन्द्र को गांधी दर्शन के प्रवक्ता, लेखक के रूप में याद किया जाता है। हिन्दू रहस्यवाद, जैन दर्शन से प्रभावित जैनेन्द्र का सम्पूर्ण साहित्य सृजन प्रक्रिया की विलक्षणता और सुनियोजित संश्लिष्टता का अनन्यतम उदाहरण है। जैनेन्द्र के बारे में अज्ञेय ने कहा था आज के हिन्दी के आख्यानकारों और विशेषतय: कहानीकारों में सबसे अधिक टेक्निकल जैनेन्द्र हैं। टेक्नीक उनकी प्रत्येक कहानी की और सभी उपन्यासों की आधारशिला है। स्त्री विमर्श के प्रबल हिमायती जैनेन्द्र ने कहानी के अंदर प्रेम को संभव किया।

1905 में अलीगढ़ के कौडियागंज गांव में जन्मे आनंदी लाल ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि वे आगे चलकर साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार बनेंगे। चार माह की उम्र में ही उनके सिर से पिता का साया उठ गया। मां और मामा भगवानदीन ने उन्हें पाला पोसा। बहरहाल बचपन अभावग्रस्त, संघर्षमय बीता और युवावस्था तक आते-आते नौकरी जिंदगी का अहम् मकसद बन गई। दोस्त के बुलावे पर नौकरी के लिए कलकत्ता पहुँचे मगर वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी।

प्रत्येक रचनाकार का अपना निजी दृष्टिकोण होता है। अपने दृष्टिकोण से ही वह जीवन और जगत को देखता, समझता है तथा एक विचार-सरणी का निर्माण करता है। यह विचार-सरणी ही साहित्य-क्षेत्र में ‘दर्शन’ कहलाती है। दार्शनिक विचारों की दृष्टि से जैनेन्द्र के विचारों में स्पष्टता की अपेक्षाकृत कमी है और उनके विचार प्रायः अस्पष्ट और दुरूह प्रतीत होते हैं। उनके विचारों में इस अस्पष्टता के कारण सुप्रसिद्ध आलोचक पं0 नन्ददुलारे वाजपेयी ने तो जैनेन्द्र के दर्शन को ‘दर्शन-हीन दर्शन’ कहकर पुकारा था। वैसे जैनेन्द्र जी के विचारों पर गाँधी-दर्शन का प्रभाव है, किन्तु उन्हें अकर्मण्य गाँधीवादी कहना अधिक उपयुक्त है। एक विद्वान आलोचक ने उचित ही कहा है-

‘‘उनके विचार-दर्शन में स्यादवाद की-सी एक निर्मम अस्पष्टता और दुरूहता रहती है। जैनेन्द्र विचारों से गाँधीवादी माने जाते हैं, परन्तु वह अकर्मण्य गाँधीवादी हैं। अपने कथा-साहित्य में अहिंसा, मानव-प्रेम, सर्वोदय आदि की भावना का अंकन करते हुए भी वह गाँधीवाद की उस चारित्रिक दृढता, उदारता और शक्ति के रहस्य को नहीं समझ पाए हैं जो गाँधी-दर्शन का मूलाधार है और व्यक्ति को अन्याय के विरूद्ध अहिंसात्मक अनवरत संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करता है। इसी कारण जैनेन्द्र-साहित्य में हमें गाँधीवाद का वास्तविक रूप नहीं मिलता। उन्होंने गाँधी के रहस्यवाद को एक आकर्षक लबादे के रूप में ओढ़कर उसके नीचे अपनी स्वाभाविक अकर्मण्यता, व्यक्तिगत कुंठा और नियतिवाद को ढांकने का प्रयत्न किया है। इसी

कारण जैनेन्द्र के प्रधान पात्र अकर्मण्य तथा अपनी वैयक्तिक कुंठाओं से ग्रस्त,पलायनवादी और संघर्ष के सामने घुटने टेक देनेवाले रहे हैं।"

उनके चरित्रों में गाँधीवादी अहिंसात्मकता की प्रधानता होते हुए भी गाँधीवादी कर्मठता का अभाव है, इस तथ्य को रेखांकित करते हुए डॉ0 राजेश्वर गुरू ने निम्नांकित उद्गार व्यक्त किए हैं-

''जैनेन्द्र का कथा-साहित्य विद्रोह का साहित्य है। वह व्यक्ति-स्वातंन्य को समाज की वेदी पर बलि होते देखकर क्षुब्ध हो उठता है। उनका विद्रोह तेजस्विता के साथ मुखर हो उठता है। उन्होंने समाज में गिरी हुई नारी की जैसी हिमायत की वैसी किसी क्रांतिदृष्टा की कृति और वाणी में ही संभव है। पर समाज को एकदम नकार कर उसको आमूल नया बनाने की कोशिश करने वाला समाज की साधारणता के साथ मेल न खा सकने के कारण समाज कसे दूर जा पड़ता है। यहीं उस व्यावहारिकता की आवश्यकता पड़ती है जो गाँधी जैसे क्रांतिदृष्टा की कृति और वाणी में ही संभव है। किन्तु गाँधीवाद का व्यावहारिक पक्ष जिस सामंजस्य को साधकर चलना चाहता है, वह जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में भी नहीं मिलता। तभी उनकी कथा-कृतियाँ एक बेचैनी-सी जगाकर रह जाती हैं। तभी लगता है कि उनकी कट्टो, उनकी सुनीता, उनकी मृणाल उनके विरूद्ध एक आरोप-पत्र, एक अभियोग-पत्र लिए जनता की अदालत में खड़ी हैं।"

जैनेन्द्र ने यद्यपि बेजबानों को सहनशीलता के माध्यम से वाणी तो प्रदान की है किन्तु उनके प्रति सहानुभूति-संवेदना जैसी कुछ, जितनी कुछ जागनी चाहिए, वह नहीं जग पाती।

विवेचन की दृष्टि से जैनेन्द्र-साहित्य में अभिव्यक्त विचार-दर्शन पर निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत विचार किया जा सकता है-

(क) व्यक्तिवादिता की प्रधानता - जैनेन्द्र के साहित्य का स्वर व्यक्तिवाद-प्रधान है। वे व्यक्ति को समाज से पृथक् करके उसको व्यक्तिवादी रूप में देखते और चित्रित करते हैं। इसी कारण उनके कुछ पात्र तो घोर व्यक्तिवादी हो गए हैं। इस संदर्भ में जैनेन्द्र का अपना मत यह है कि 'व्यक्ति के आंतरिक रूप के आधार पर ही उसको भली प्रकार और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।' उनकी इस विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है-

''जैनेन्द्र की साहित्य-सृष्टि व्यक्तिमुखी है। उनका सम्बन्ध जीवन के व्यापक स्वरूपों से कम ही है। वे वैयक्तिक मनोभावों और स्थितियों के चित्रकार हैं। वे सामाजिक जीवन के वास्तविक प्रवाह से दूर जाकर आध्यात्मिक, सूक्ष्म-तत्वों को चित्रित करने का लक्ष्य रखते हैं। जैनेन्द्र सामाजिक जीवन से दूर जाकर जिस साहित्य की सृष्टि करते हैं, उसमें व्यक्ति के मानसिक संघर्ष और उसकी परिस्थितिजन्य समस्याएँ प्रमुख रूप से सामने आती हैं, परन्तु उनका निराकरण करने में लेखक का दृष्टिकोण स्वस्थ और स्पष्ट नहीं है।"

जैनेन्द्र के साहित्य में व्यक्तिवादिता का प्रबल आग्रह मिलने के संदर्भ में एक अन्य विद्वान आलोचक ने भी लिखा है-

''व्यक्ति को समाज से अलग करके उसकी मानसिक कुंठाओं और ऊहापोहों का सूक्ष्म विश्लेषण करने में ही जैनेन्द्र की आस्था रही है। उनका व्यक्ति समाज के नैतिक बंधनों, मर्यादाओं और आदर्श के घेरे में छटपटाता दिखाई पड़ता है। वह इस घेरे को तोड़कर मनमानी करने का प्रयत्न करता है, परन्तु समाज का चक्र उसे कुचलकर रख देता है। ऐसा चित्रण कर जैनेन्द्र प्रकारान्तर से व्यक्ति-स्वातंन्त्य की मांग उठाते हैं। उनके इस व्यक्ति-स्वातंन्त्य का रूप पूर्णतः प्रतिक्रियावादी और समाज-निरपेक्ष है। यह व्यक्ति-स्वातंन्त्य है उन अकर्मण्य पलायनवादी व्यक्तियों का व्यक्ति-स्वातंन्त्य है, जो समाज की नैतिक मान्यताओं के विरूद्ध विद्रोह करने का प्रयत्न तो करते हैं, उन्हें भंग भी करते हैं, परन्तु समाज द्वारा कुचले जाकर अपने आत्म-पीड़न में ही सुख का अनुभव करते हुए यह सोचते रहते हैं कि वह समाज की रंचमात्र भी चिन्ता नहीं करते। ऐसे कुंठाग्रस्त अकर्मण्य व्यक्ति हमारे मध्य-वर्ग के ही प्राणी होते हैं। उनके विद्रोह को कुछ-कुछ आधुनिक हिप्पियों का सा विद्रोह माना जा सकता है।"

(ख) आत्म-पीड़न का अस्वस्थ रूप - जैनेन्द्र ने गाँधीवादी आत्म-पीड़न को अपनाया तो है किन्तु वह उसके स्वस्थ रूप के स्थान पर उसके विकृत रूप को ही अपनाते मिलते हैं। गाँधी जी ने आत्म-पीड़न को उन्हीं अवसरों पर प्रयुक्त किया था जब वे कोई अन्याय अथवा अत्याचार होते देखते थे। अनेक अवसरों पर उन्होंने इस शस्त्र का सफलतापूर्वक प्रयोग किया और इसके द्वारा वे हिन्दू-मुस्लिम दंगों को बन्द कराने अथवा आंग्ल-सरकार को झुकाने में सफल भी हुए थे। अभिप्राय यह है कि गाँधी जी का आत्म-पीड़न मात्र आत्म-पीड़न के लिए नहीं होता था अपितु उसका उद्देश्य अन्याय या अत्याचार का प्रतिरोध करना होता था। इसके सर्वथा विपरीत जैनेन्द्र के पात्र आत्म-पीड़न को मात्र आत्म-पीड़न के लिए अपनाते मिलते हैं। उदाहरणार्थ उनके उपन्यास 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल को लिया जा सकता है जो अकारण ही गंदी बस्ती में घुल-घुल कर मर जाती है, किन्तु अपने भतीजे प्रमोद के साथ रहना स्वीकार नहीं करती। जैनेन्द्र के पात्रों की इस व्यक्तिवादिता, कुंठाग्रस्तता और आत्मपीड़न को उद्घाटित करते हुए एक विद्वान आलोचक ने उचित ही कहा है-

''जैनेन्द्र के कुंठाग्रस्त और आत्म-पीड़न का मार्ग अपनाते हैं, परन्तु इस आत्म-पीड़न से उनका कोई कल्याण नहीं होता, उन्हें अपनी मानसिक समस्याओं से कुक्ति नहीं मिलती। इस आत्म-पीड़न में उन्हें ऐसे ही सुख का अनुभव होता रहता है, जैसा अनुभव खुजली के मरीज को खुजाते-खुजाते स्वयं को लहू-लुहान करने में मिलता है। इसका केवल इतना ही परिणाम निकलता है कि ऐसे पात्र पाठकों की करूणा, दया और सहानुभूति का थोड़ा- सा अंश प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। जैनेन्द्र का यह एक अनोखा आदर्शवाद है। वस्तुतः यह एक ऐसे व्यक्ति का आदर्शवाद है जो स्वभाव से नियतिवादी, पलायनशील और अकर्मण्य है।"

(ग) काम-कुंठा का प्राधान्य - जैनेन्द्र के कथा-साहित्य के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उनके अधिकांश पात्र काम-कुंठा से ग्रस्त हैं। इस तथ्य से तो इंकार नहीं किया जा सकता कि व्यक्ति की काम-भावना उसकी मूल-प्रवृत्तियों में से एक है, किन्तु वह स्वस्थ व्यक्ति के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग ही मानी जा सकती है, उसका ध्येय नहीं स्वीकार की जा सकती। मानव

की काम-भावना के नियमन के लिए ही समाज ने विवाह-प्रथा का आश्रय लिया है, किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को उभारा है कि इच्छित जीवन-साथी न मिलने की दशा में अथवा व्यक्ति की रूचि-भिन्नता के कारण वह प्रायः अन्य नर-नारियों से नहीं मिल पाते, जिसके कारण उनके अन्तर्मन कुंठित हो उठते हैं और वे उनके जीवन-व्यवहार में अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न कर देते हैं। इस स्थिति को स्वीकार करते हुए भी यह नहीं माना जा सकता कि ऐसे नर-नारियों को ही अपनी रचनाओं के नायक या नायिकाएँ बनाकर समाजिकों के समक्ष, समाज के इस विकृत रूप को ही प्रस्तुत किए जाए।

एक विद्वान आलोचक के शब्दों में-''जैनेन्द्र यद्यपि फ्रॉयड से पूर्ण-रूपेण प्रभावित नहीं है, फिर भी उनके पात्रों में हमें काम-कुंठा का ही प्राधान्य मिलता है। वह कहीं नग्नवाद का सहारा लेते हैं और कहीं अपने पात्रों की इसी कुंठा से ग्रस्त जीवन में भटकते हुए दीखते हैं, साथ ही वह नग्न अश्लीलता से ऊपर उठकर प्रेम के उदार रूप का निर्माण भी करते हैं। उन्होंने इस कुंठा पर दार्शनिकता का लबादा डालकर उसके रूप को परिवर्तित करने का प्रयत्न अवश्य किया है, लेकिन यह लबादा इतना झीना है कि काम-कुंठा का नग्न रूप उसके भीतर से झाँकता साफ दिखाई दे जाता है।"

इस संदर्भ में जैनेन्द्र के अपने विचार भी अवलोकनीय हैं- ''प्रेम ही कामुकता, आर्थिक स्वार्थ तथा हिंसक या महत्त्वाकांक्षा पर विजय पा सकता है। नीति-नियम, आदेश, मर्यादा वैसा करने में असमर्थ सिद्ध होते हैं। असल में आस्तिक राक्षसी प्रेम और परस्परता के माध्यम से वैसी हो सकती है, शुद्ध मर्यादा से नहीं रह सकती। परस्परता ही नीति है, नैतिकता और शीलता है, परस्परता के विपरीत जो है, सब अनैतिकता और हिंसा है।"

(घ) वैयक्तिक कुंठाओं की प्रधानता - जैनेन्द्र के पात्रों में जहाँ काम-कुंठा की प्रधानता है, वहीं वे अन्य प्रकार की कुंठाओं से भी ग्रस्त मिलते हैं। इस सन्दर्भ में एक विद्वान आलोचक ने उचित ही कहा है कि 'जैनेन्द्र के आरम्भिक कथा-साहित्य में जो प्रधान पात्र आए हैं उनमें हमें वैयक्तिक कुंठाओं का प्राधान्य और प्राबल्य मिलता है। ये ऐसे कुंठाग्रस्त पात्र हैं जो अपनी वैयक्तिक कुंठाओं की पूर्ति के लिए सामाजिक-नैतिक बंधनों का उल्लंघन करते हैं और इस अपराध के लिए समाज द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर उसके विरूद्ध सशक्त संघर्ष न कर भाग खड़े होते हैं और अपनी उन कुंठाओं को ही एकान्त में सहलाते रहते हैं। जैनेन्द्र ने अपने इन पात्रों का निर्माण स्वयं अपने स्वभाव और चरित्र के अनुसार किया है, ऐसा आभास मिलता है।"

जैनेन्द्र स्वभाव से भीरू, संघर्षो से पलायन करने वाले तथा अन्तर्मुखी व्यक्ति रहे हैं। भय से उन्होंने राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेना प्रायः बन्द कर दिया था और बारह-तेरह वर्षो तक साहित्य-सृजन से भी मुख मोड़े, अकर्मण्यों का सा अज्ञात जीवन बिताते रहे थे। जिस समय उन्होंने दोबारा लिखना आरंभ किया था, उस समय उनकी मानसिक स्थिति अशान्त और विक्षुब्ध थी। लेखन द्वारा उन्होंने अपनी इस मानसिक स्थिति से मुक्ति पाने का प्रयत्न किया था। जैनेन्द्र की यह स्थिति निराशवादी और नियतिवादी वाली स्थिति थी। इसी कारण उनके द्वारा

रचित पात्रों में भी हमें उनकी इस मानसिक स्थिति की प्रतिच्छाया मिलती है। अंतर्मुखी व्यक्ति मूलतः पलायनवादी होता है।

(ड़) नयी नैतिक मर्यादाओं की स्थापना - एक विद्वान आलोचक के शब्दों में- ''जैनेन्द्र ने प्रेम के क्षेत्र में नयी नैतिक मान्यताओं की स्थापना की है या यह कहिए कि वे प्रेम के क्षेत्र में नैतिक मर्यादाओं के विरोधी हैं। उनका मत है कि मर्यादा के बन्धन कामुकता को बढ़ावा दिया करते हैं और उससे मन में कुंठा उत्पन्न होती है। अपनी इस धारणा के कारण ही वे प्रेम के क्षेत्र में नारी की पूर्ण स्वतंत्रता के समर्थक हैं। उनके प्रथम चार उपन्यासों में, उनकी नायिकाओं को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है उससे यही ध्वनि निकलती है कि नारी प्रत्येक स्थिति में प्रेम करने के लिए स्वतंत्र है। विवाह-पूर्व नारी का प्रेम कभी-कभी उसके वैवाहिक जीवन में उमड़कर उसकी शंति भंग कर देता है। ऐसे अवसरों पर यदि नारी सतीत्व के नाम पर अपने उस प्रेम पर बंधन लगाती है तो क्या उसे सतीत्व के बराबर नहीं माना जा सकता? परन्तु जैनेन्द्र ने नारी की इस समस्या का उदार पति की दृष्टि से समाधान करने का प्रयत्न किया है। उनके तीन उपन्यासें में से 'सुनीता' की सुनीता, 'सुखदा' और 'विवर्त' की मोहिनी अपने उदार पतियों की सहमति और स्वीकृति पाकर अपने प्रेमियों के पास जाती है, परन्तु ये तीनों ही नारियाँ अन्ततः टूट जाती हैं। पति ही ऐसी अभिशप्त नारियों की परम गति बन जाते है।"

जैनेन्द्र ने अपने आरंभिक उपन्यासों में पतियों को जिस उदार रूप में प्रस्तुत किया है, उससे यह संकेत मिलता है कि जैनेन्द्र का अभिप्राय यह ध्वनित करना रहा है कि यदि आधुनिक वैवाहिक जीवन को सफल-सरल बनाना है, तो पतियों का अपनी पत्नियों के चारित्रिक स्खनल की ओर उदार दृष्टिकोण होना चाहिए। उनके इस दृष्टिकोण को असंगत बताते हुए एक विद्वान आलोचक ने उचित ही यह मत व्यक्त किया है-

''पत्नी के प्रति पति की इस उदारता में ही जैनेन्द्र का प्रेम सम्बंधी आदर्शवाद रूप पाता है। इस उदारता के रूप में जैनेन्द्र सम्यक् दाम्पत्य का संकेत देते हैं। जैनेन्द्र अपने इस संकेत को दार्शनिकता के ताने-बाने से बुनकर ऐसा आकर्षक सूत्र प्रदान करते हैं कि पाठकों को वह सहज स्वीकार्य हो सके। यह एक प्रकार से वर्तमान सामाजिक-नैतिक व्यवस्था के प्रति एक अराजकतापूर्ण दृष्टिकोण है। जैनेन्द्र के साथ सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि इस उन्मुक्त स्वच्छन्द प्रेम के साथ उनकी सतीत्व की भावना भी लगी-लपटी चलती है। 'त्यागपत्र' की मृणाल इसका उदाहरण है। मृणाल के लिए तन का कोई मूल्य या महत्व नहीं है। उसे वह दूसरों को ऐसे दे डालती है जैसे वह कुछ भी नहीं हो। फिर भी जैनेन्द्र उसे सती घोषित करते हुए उसे अत्यंत सूक्ष्म तंतु के सहारे पति के साथ जोड़े रहते है। सुनीता, सुखदा, कल्याणी, मोहिनी आदि सभी नारियाँ स्वच्छंद प्रेम की आकांक्षा रखते हुए भी पतियों के साथ जुड़ी रहती है। वस्तुतः सतीत्व की भावना वायवी है, यथार्थ नहीं। यह जैनेन्द्र के विचित्र, अव्यावहारिक आदर्शवाद की उपज है।"

(च) नारी-सम्बन्धी भाव-विचार - जैनेन्द्र के अधिकांश अपन्यासों में नारियों को ही प्रमुखता प्रदान की गई है और वे नारी प्रधान अथवा नायिका प्रधान हैं। उनके उपन्यासों के सुखदा, सुनीता, कल्याणी जैसे नामकरण भी इसी तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि उनमें नारी-पात्रों के

चरित्रांकन को ही बलपूर्वक प्रस्तुत किया गया होगा। अपने नायिका प्रधान उपन्यासों में जैनेन्द्र ने नारी-जीवन से सम्बन्धित प्रेम, विवाह, नारी-स्वातन्त्र्य आदि समस्याओं को उभारा है और उनके उपन्यासों का मूलस्वर नारियों को अधिक से अधिक अधिकार प्रदान करवाने का रहा है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा भी है-

''पुरूष बनाता है, विधाता बिगाड़ देता है- अंग्रेजी की एक कहावत है। संशोधन यह भी किया जा सकता है- पुरूष बनाता है, स्त्री बिगाड़ देती है। तब भी इस कहावत में तथ्य कम नहीं रहता। बात वास्तव में यह है कि पुरूष कम बनाता-बिगाड़ता है, जो कुछ बनाती-बिगाड़ती-स्त्री ही। स्त्री ही सभी कार्यों को बनाती है, घर से कुटुम्ब बनाती है। जाति और देश को मैं कहता हूँ कि स्त्री ही बनाती है, फिर इन्हें बिगाड़ती भी वही है। आनन्द भी वही और कलह भी वही, हरा भी और उजाड़ भी, दूध भी और खून भी, रोटी भी और क्रीम भी और फिर आपकी मरम्मत और श्रेष्ठता भी-सब कुछ स्त्री ही बनाती है। कर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फिर फैशन की जड़ भी वही है। बात क्यों बढ़ाओ, एक शब्द में कहो, दुनियां स्त्री पर टिकी है। जो आँखों से देखते है, चुपचाप इस तथ्य को स्वीकार कर दुबके बैठे रहते हैं, ज्यादा चूँ नहीं करते। जिनकी आँखें नहीं, वे मानें या न मानें, हमारी बला से।"

डॉ0 रामरतन भटनागर ने जैनेन्द्र के नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण को रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरतचंद्र से मिलता दिखते हुए लिखा है-

''रवीन्द्र बाबू और शरच्चन्द्र नारी-जीवन की इस द्वैध स्थिति को स्वाभाविक मानकर चलते हैं और सिद्धान्त नहीं गढ़ते। जैनेन्द्र इसे नारी की अग्रगामिता मानकर चलते हैं और घर के प्रति उसके जाग्रत विद्रोह को विकास का चिन्ह मानते हैं। यह विद्रोह उनके उपन्यासों में क्रमशः आया है। 'सुनीता' में बुद्धुपन है, 'सुखदा' में विस्फोट है और 'विवर्त' में लालसा है। 'व्यतीत' में इसे सहज रूप में लिया गया है। पति अकल्पित रूप में उदार हैं, प्रारंभ से ही पत्नियोंके सहायक हैं कि किसी प्रकार प्रयत्न सार्थक बनें। इसी से घर के प्रति विद्रोह या नारी-स्वतंत्रता का नारा धीमा पड़ गया है। इस प्रकार जैनेन्द्र के उपन्यासों की नायिकाएँ आधुनिकाएँ है। वे गृह-प्राचीरों में बन्दी होना अस्वीकार करती हैं या अपने दाम्पत्य जीवन से असंतुष्ट हैं। इसी बीच में नया या पुराना प्रेमी आ जाता है और घर की ऊब से बचकर चलने के लिए वह उसे डूबने का सहारा बना लेती है, परन्तु अन्त तक चलते रहना उनके लिए असंभव है। जहाँ रवि बाबू पति के बलिदान से नारी के प्रत्यागमन के लिए मार्ग खोलते हैं। वहाँ शरच्चन्द्र प्रेमी के बलिदान से दम्पति के पास आने की कल्पना करते हैं। प्रेमी मृत्यु द्वारा हटा लिया गया है, परन्तु उसकी पुण्य-स्मृति ने टूटे हुए दो हृदयों को जोड़ दिया है। जहाँ नारी स्वयं बलि की वेदी पर चढ़ गई है, वहाँ पति और प्रेमी उसकी पुण्य-स्मृति में बंधे हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में इस त्रिकोण की क्या स्थिति है? 'सुनीता' में प्रेमी पलायन कर जाता है, क्योंकि उनका प्रेम बाहरी तन का है और सुनीता जब निराश होकर यह सत्य प्रकट कर देती है, तो वह सत्य की इस चकाचौंध को सहन नहीं कर पाता और भाग जाता है। उदाराशय पति, पलायनशील प्रेमी जो कलाकार और क्रांतिकारी बनने की आत्म-प्रवंचना में ग्रस्त है और घर-बाहर, सतीत्व-नारीत्व, पति-प्रेमी के बीच में झूलती हुई

पतिनिष्ठा। परन्तु नारी-स्वातन्त्र्य का दम भरकर प्रेम के स्वच्छन्द पथ पर चलने का साहस करने वाली नारी के टूटने की कहानी ही जैनेन्द्र के उपन्यासों में वर्णित है। वर्णित ही अधिक है, चित्रित कम है। कला की रंग-रेखाओं से नहीं, ज्ञान और टेकनीक की मुद्राओं से वह विभूषित है।"

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. जैनेन्द्र कुमार का जन्म...................वर्ष में हुआ है।
2. जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास...............में आते है।
3. जैनेन्द्र कुमार का निधन.................वर्ष में हुआ।
4. परख जैनेन्द्र का..................उपन्यास है।
5. वातयन जैनेन्द्र का...............है।

(2) हाँ/ नहीं में उत्तर दीजिए –

1. फाँसी जैनेन्द्र का कहानी संग्रह है ।
2. जैनेन्द्र की तुलना शरतचन्द्र से की गई है।
3. जैनेन्द्र हिंदी साहित्य में पहली बार मनोविज्ञान का प्रवेश कराने वाले साहित्यकार हैं।
4. जैनेन्द्र कुमार प्रेमचन्द की परम्परा के साहित्यकार है।

है जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्री-स्वतंत्रता का प्रश्न उठाया गया है।

13.5 सारांश

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार जैनेन्द्र के दार्शनिक विचारों में अस्पष्टता है, उसी प्रकार उनकी नारी-सम्बन्धी मान्यताएँ भी अस्पष्ट-सी हैं और उनके नारी-पात्र पाठकों के समक्ष एक पहेली-से प्रतीत होते हैं। यदि मृणाल को ही लिया जाए तो यह बात समझ में नहीं आती कि यह तथ्य उसके पतिव्रता होने का प्रमाण कैसे कहा जाएगा कि वह पति को अपने विवाह-पूर्व प्रेमी के बारे में बताए। चलो इस तथ्य को तो किन्ही अंशों तक उसके पतिव्रत्य का अंग माना भी जा सकता है, किन्तु पति की इस इच्छा का अंधानुकरण करना कि वह उसके साथ रहना पसन्द नहीं करता, मृणाल के पतिव्रत्य का प्रमाण कैसे माना जा सकता है? यदि पति से अलग रहते हुए वह अपने सतीत्व की रक्षा करती रहती तो भी एक बात थी, किन्तु न जाने किस तर्क के आधार पर वह कोयले वाले को अपना शरीर सौंपते हुए उसे भी पति जैसा अधिकार प्रदान कर देती है। यह जानते हुए भी कि यह कोयले वाला उसके रूप का लोभी है, वह उसके प्रति इस तथ्य के कारण बड़ी दयार्द्र है कि वह उसके लिए अपने बीवी-बच्चों को त्यागकर आया है। कहना न होगा कि यह जैनेन्द्र के परम्परा-विरोधी दृष्टिकोण का ही परिचायक है। कुल मिलाकर जैनेन्द्र का साहित्य हिंदी साहित्य में एक नए तरह की प्रवृत्ति लेकर आया है। इनका साहित्य पहली बार व्यक्ति स्वातंत्र्य (विशेषकर स्त्री) के प्रश्न पर इतने विस्तार से विचार करता है। गद्य साहित्य की कलात्मक अभिव्यंजना की दृष्टि से भी जैनेन्द्र का साहित्य उल्लेखनीय है।

13.6 शब्दावली

- मनोविश्लेषणात्मक - अवचेतन मन के रहस्यों का विश्लेषण करना।
- कुंठा - दमित इच्छाएँ
- पलायन - कर्म से भागने की प्रवृत्ति
- सतीत्व - पति/पत्नी के लिए अपने को नष्ट करने की भावना।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. 2, जनवरी 1905 2. मनोविश्लेषणात्मक परंपरा 3. 1988

4. उपन्यास 5. कहानी-संग्रह

(2) 1. हाँ 2. हाँ 3. हाँ 4. नहीं 5. हाँ

13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, माया एवं कृष्णदेव शर्मा, त्यागपत्रः एक विवेचन।
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

13.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भटनागर, नामरतन – जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा।

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. जैनेन्द्र-साहित्य में दृष्टव्य उनके विचार-दर्शन पर प्रकाश डालिए।
2. ‘‘जैनेन्द्र विचारक और चिन्तक पहले हैं, साहित्यकार बाद में।"-इस कथन को जैनेन्द्र-साहित्य से उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
3. जैनेन्द्र-साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए सिद्ध कीजिए कि जैनेन्द्र के विचारों में स्पष्टता की अपेक्षाकृत कमी है और उनका दृष्टिकोण परम्परा-विरोधी रहा है।
4. ‘‘वैसे तो जैनेन्द्र के विचार-दर्शन पर गाँधीजी का प्रभाव है, किन्तु उन्हें अकर्मण्य गाँधीवादी कहना अधिक उपयुक्त है।"-इस कथन की युक्तियुक्त समीक्षा कीजिए।
5. पं0 नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार, ‘जैनेन्द्र का दर्शन’ दर्शन-हीन है। आप उनके इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।

इकाई 14 - त्यागपत्रः पाठ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 मूलपाठ
14.4 व्याख्या
14.5 सारांश
14.6 शब्दावली
14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
14.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन किया। उस इकाई में आपने जाना कि जैनेन्द्र कुमार का साहित्य एक नई तरह की प्रवृत्ति लेकर हिंदी साहित्य में आया। उस समय प्रेमचंद की सामाजिक समस्याओं को लेकर चलने वाला साहित्य प्रचलन में था। जैनेन्द्र जी ने उस परम्परा से भी व्यक्ति मन को, व्यक्ति स्वातंत्र्य को साहित्य के केन्द्र में खड़ा किया। इस इकाई में हम जैनेन्द्र कुमार के प्रसिद्ध उपन्यास एवं कालजयी उपन्यास 'त्यागपत्र' के मूलपाठ का अध्ययन करेंगे। यह उपन्यास हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखता है। जैनेन्द्र जी की साहित्य साधना 'त्यागपत्र' में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। इस इकाई में हम 'त्यागपत्र' के महत्वपूर्ण अंशों का पाठ करेंगे। उसके पश्चात् उन अंशों की व्याख्या करने का भी प्रयत्न करेंगे जिससे जैनेद्र के मूल साहित्य से आपका परिचय हो सके।

14.2 उद्देश्य

एम.ए.एच.एल 201की यह 14वीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 'त्यागपत्र' के मुख्य अंश से परिचित हो सकेंगे।
- 'त्यागपत्र' की व्याख्या कर सकेंगे।
- 'त्यागपत्र' में आये पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।

14.3 मूलपाठ

(1) ...नहीं भाई, पाप पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ, कानून की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की को भी जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि जिनके ऊपर राई को नाप-जोखकर पापी को पापी कहकर व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जाने। मेरे बस का वह काम नहीं है। मेरी बुआ पापिष्ठा नहीं थीं, यह भी कहने वाला मैं कौन हूँ। पर आज मेरा जी अकेले में उन्हीं के लिए चार आंसू बहाता है। मैंने अपने चारों ओर तरह तरह की प्रतिष्ठा की बाड़ खड़ी करके खूब

मजबूत जमा ली है। कोई अपवाद उसको पार कर मुझ तक नहीं आ सकता, पर उन बुआ की याद जैसे मेरे सब कुछ को खट्टा बना देती है। क्या वह याद मुझे अब चैन लेने देगी! उनके मरने की खबर अभी पाकर बैठा हूँ। वह सुखपूर्वक नहीं मरीं, पर इतना तो मैं उनकी मौत के दसियों वर्ष पहले से जानता था। फिर भी जानना चाहता हूँ कि अन्त समय क्या उन्होंने अपने इस भतीजे को भी याद किया था ? याद किया होगा, यह अनुमान करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

हम लोगों का असली घर पछाँह की ओर था। पिता प्रतिष्ठा वाले थे और माता अत्यन्त कुशल गृहणी थीं। जैसी कुशल थीं, वैसी कोमल भी होतीं तो? पर नहीं, उस 'तो'-? के मुँह में नहीं बढ़ना होगा। बढ़े कि गए। फिर तो सारी कहानी उस मुँह में निगलकर समा जाएगी और उसमें से निकलना भी नसीब न होगा। इतना ही हम समझें कि माँ जितनी कुशल थीं, उतनी कोमल नहीं थीं। बुआ पिताजी से काफी छोटी थीं। मुझसे कोई चार-पाँच वर्ष बड़ी होंगी। मेरी माता के संरक्षण में मेरी ही भाँति बुआ भी रहती थीं। वह संरक्षण ढीला न था और आज भी मेरे मन में उस अनुशासन की कड़ाई के लाभालाभ पर विचार चला करता है।

पिताजी दो भाई और तीन बहनें। भाई पहले तो ओवरसियरी में युक्त प्रान्त के इन-उन जिलों में रहे। फिर एकाएक, उनकी इच्छा के अनुकूल उन्हें बर्मा भेज दिया गया। वह तबसे वहीं बस गए और धीमे-धीमे आना-जाना एक राह रस्म की बात रह गई। इधर वह सिलसिला भी लगभग सूख चला था। दो बड़ी बहनें विवाहित होने के बाद प्रसव-संकट में चल बसीं थीं। अकेली यह छोटी बुआ रह गई थीं। पिताजी उनको बड़ा स्नेह करते थे। उनकी सभी इच्छाएँ वह पूरी करते। पिता का स्नेह बिगाड़ न दे, इस बात का मेरी माता को खास ख्याल रहता था। वह अपने अनुशासन में सावधान थीं। मेरी माँ बुआ से प्रेम करती थीं, यह तो किसी हालत में नहीं कहा जा सकता; पर आर्य गृहणी का जो उनके मन में आदर्श था, मेरी बुआ को वे ठीक उसी के अनुरूप ढालना चाहती थीं।

ऐसे ही ब्याह के दिन आते गए और ब्याह हो गया। विवाह होने से पहले बुआ कई घण्टे अपनी छाती से मुझे चिपकाये बहुत-बहुत आँसू रोती रहीं।.....बुआ के जाते समय फूट-फूट कर रोया। मैंने किसी की शर्म नहीं की। मैंने चलकर घूँघट वाली बुआ का आँचल पकड़ लिया। कह दिया मैं बिना बुआ के अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा, नहीं करूंगा।

पास ही माँ खड़ी थीं। उनको देखकर जी हो आया कि मैं क्यों उनके गले नहीं लग जाऊँ और कहूँ, 'माँ! माँ!' उनकी ठोड़ी हाथ में लेकर कहूँ 'मेरी माँ! मेरी माँ!' इतने में बुआ ने मेरे हाथ में रेशम का रूमाल थमाया और एक झपट में वहाँ से चली गयीं। मैं सँभल भी न पाया था कि द्वार के आगे से मोटर जा चुकी थी।

(2) चौथे रोज बुआ आ गयीं। ब्याह के वक्त मैंने अपने फूफा को देखा था। बड़ी-बड़ी मूँछें थीं और उम्र ज्यादा मालूम होती थी। डील-डौल में खासे थे। मुझे यह पीछे मालूम हुआ कि उनका यह दूसरा विवाह था। हमारी बुआ फूल-सी थीं। जब वह ससुराल से आयीं, मेरे लिए कई तरह की चीजें लायी थीं। उन्होंने मुझे एकान्त में ले जाकर कहा, ''प्रमोद, देखेगा, मैं तेरे लिए क्या-क्या लायी हूँ?''

अगले रोज एक कागज देकर मुझे शीला के यहाँ भेजा गया। मैं शीला को जानता था। उसके कोई बड़े भाई हैं, यह मैं नहीं जानता था। कागज उन्हीं के हाथों में देने को कहा गया था। शीला के बड़े भाई मुझे अच्छे लगे। मैंने जब यह कागज उन्हें दिया, तब उसे लेकर वह मेरी उपस्थिति को इतना भूल गए कि मुझे अपना अपमान मालूम हुआ। लेकिन फिर उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेम किया, चूमा, गोद में लिया, कन्धे पर बिठाया और तरह-तरह की खानें की चजें दीं। शीला भी मुझको अच्छी लगीं। मेरा जी हुआ कि कोई बहाना हाथ लगे, तो मैं यहाँ रोज आया करूँ। शीला के भाई ने भी एक चिट्ठी लिखकर मेरी जेब में रख दी।

इसके बाद किसी विशेष बात होने की मुझे याद नहीं। अगले रोज फूफा आये। मेरा मन उनकी तरफ खुला नहीं। फूफा ने सफर की सब सुविधा का प्रबंध कर दिया। बुआ को तनिक कष्ट न होगा। यहाँ से जगह तीन सौ मील ही तो है। मोटर में जाएँगे, न हुआ तो रास्ते में दो-एक जगह पड़ाव कर लेंगे। डाक-बंगले जगह-जगह हैं ही। पिताजी निश्चिंत रहे कि फूफा हमारी बुआ को जरा भी किसी तरह की तकलीफ न होने देंगे।

(3)

ब्याह के कोई आठ-दस महीने बाद की बात होगी। देखते क्या हैं कि बिना कुछ खबर दिये बुआ एक नौकर को साथ लेकर घर चली आयी हैं। पिता इस बात से अप्रसन्न हुए। पर क्या वह प्रसन्न नहीं हुए? माँ ने कोई नाराजगी प्रकट नहीं की, बल्कि उन्होंने तो परोक्ष में फूफा को काफी सर्द-गर्म तक कह डाला।

मैंने पूछा, 'तुम सच बताओ, वहाँ जाना चाहती हो या नहीं?''

बुआ ने कहा, ''सच बताऊँ?''

बोलीं, ''अच्छा सच बताती हूँ। मैं तेरे साथ रहना चाहती हूँ। रखेगा?''

यह कहकर उन्होंने ऐसे देखा कि मैं झेंप गया और उन्होंने मुझे खींचकर अपनी गोदी में ले लिया। फिर एकाएक मुझे अपने से चिपटाकर बोलीं, ''एक बात बता। तुझे बेंत खाना अच्छा लगता है?''

मैंने कहा, ''बेंत?''

बोलीं, ''सच-सच कहती हूँ, प्रमोद। किसी और से नहीं कहा, तुझे कहती हूँ। बेंत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता है। न यहाँ अच्छा लगता है, न वहाँ अच्छा लगता है।''

मैं आश्चर्य में रह गया। बोला, ''क्या कहती हो बुआ? वह मारते हैं।''

'हाँ मारते हैं।''

.....

''क्यों मारते हैं?''

'मैं खराब हूँ, इसलिए मारते हैं।''

(4) एक दिन ऐसा हुआ कि मैंने माँ से पूछा, ''माँ, बुआ का कोई हाल आया है? अबकी छुट्टियों में मैं उनके पास जाऊँगा।'' सुनकर माँ फटी आँखों मुझे देखती रह गयीं, बोली नहीं।

बहुत दिनों बाद जो बात मैंने जानी, वह यह थी कि पति ने बुआ को त्याग दिया है। बुआ दुश्चरित्र हैं और फूफा को मालूम है कि वह सदा से ऐसी हैं। 'छोड़ दिया', इसका मतलब एकाएक समझ में नहीं आया। छोड़ कहाँ दिया है? क्या वह खुद चली गई हैं, या किसी अलग स्थान पर उनको रख दिया है, या उसी घर में ही हैं और संबंध-विच्छेद हो गया है? पता चला कि उसी शहर में एक छोटे से घर में रख दिया है, कोठरी है।

इसके थोड़े दिनों बाद पिताजी का देहान्त हो गया। अब हम जरा संकुचित भाव से रहने लगे, क्योंकि माँ बहुत सोच-विचार वाली थीं। झूठी शान से बचती थीं और मेरे बारे में ऊँची आशाएँ रखती थीं। इस बीच मैं एफ.ए. कर ही चुका था। थर्ड ईयर में पढ़ता था। यूनिवर्सिटी जा रहा था कि उस नगर के स्टेशन का बोर्ड देखकर एकाएक मन में संकल्प सा उठने लगा। मैं बुआ को ढूंढ़ निकालूँगा और कहूँगा-''बुआ तुम! यह तुम्हारा क्या हाल है? चलो। यहाँ से चलो।''

यूनिवर्सिटी से छुट्टी होते ही घर पहुँचने के लिए माँ ने लिख भेजा था। बात यह है कि मेरे ब्याह की बातचीत के सूत को उठाकर इस बार माँ उसमें पक्की गाँठ दे देना चाहती थीं। लेकिन लौटते हुए रास्ते के उस स्टेशन पर उतरे बिना मुझसे नहीं रहा गया और मैंने बुआ को खोज निकाला।

(5) शहर के उस मुहल्ले में जाते हुए मेरा मन दबा आता था। कहाँ बुआ, कहाँ यह जगह, यह जिन्दगी! वहाँ नीचे दर्जे के लोग रहते थे। भीतर गली में गहरे जाकर बुआ की कोठरी थी। बनिया बाहर एक दुकान लेकर वहाँ दिन में कोयले का व्यवसाय करता था। मैं कोठरी के द्वार पर पहले तो ठिठका, फिर हिम्मत बाँध दरवाजा ठेलता हुआ अंदर चला गया।

मैं बुआ को देखता रह गया। मेरे भीतर जाने कैसी उथल-पुथल मची थी। मैं नहीं जानता था कि मैं क्या चाहता हूँ-इस सामने बैठी प्रगल्भ नारी को घृणा करना चाहता हूँ, या उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहता हूँ। वह नारी अति निर्मम स्नेहभाव से मुझे देखती रही, कहती रही-''लेकिन यह स्वप्न में भी न सोचा था कि खोजते हुए तुम्हीं मुझे पा लोगे। सोचा यह था कि जब चित्त न मानेगा, तब अपने प्रयत्नों से दूर से ही तुम्हें देखकर जी-भर लिया करूँगी। प्रमोद, तुम मुझे घृणा कर सकते हो। लेकिन फिर भी ता मैं तुम्हारी बुआ हूँ।''

मैं उस काल अत्यन्त अवश हो आया था। जी हुआ कि यहाँ से भाग सकूँ, तो भाग जाऊँ; लेकिन जकड़ बैठा रह गया। मन पर बहुत बोझ पड़ रहा था। न क्रोध में चिल्लाया जाता था, न स्नेह के आवेग में रोया जाता था।

''प्रमोद, मेरी अवस्था देखते हो। तुमसे छिपाऊँगी क्या? यह गर्भ इसी आदमी का है।''

इसके बाद बहुत देर तक कोई कुछ नीं बोला। चुप, सुन्न, मानों सब कुछ ठहर गया। मानों समय जमकर खड़ी शिला हो गया। नीरवता ऐसी हो आयी कि हमारे संसार ही हमें हाय-हाय शोर करते हुए जान पड़ने लगे। ऐसे कितना समय बीता। त्रास दुर्वह हो गया। तब उस बर्फीली चट्टान-सी जमी हुई चुप्पी को तोड़कर बुआ ने कहा-'प्रमोद, तुम सोये तो अवश्य नहीं हो, और मैं जाने क्या-क्या बकती रही! कहनी-अन-कहनी जाने क्या-क्या कह गई। दुहनया में मेरे

तुम एक हो जिससे दुराव मुझसे नहीं सखा जाएगा। अच्छा अब तुतम आराम करो। मैं जरा पड़ोस के पास के एक बालक को देख आऊँ।'

मैं पड़ा ही रहा, बोला नहीं; और बुआ चली गयीं।

(6) मैं वहाँ सो नहीं सका। मेरा मन बहुत घबराने लगा। जो कहानी सुनी है, उसे कैसे लूँ? कैसे झेलूँ? मुझसे वह सँभाली नहीं जाती थी। इलाज यही था कि मैं उसके तले से बचकर चला जाऊँ। चला जाऊँ उसी अपनी दुनिया में जहाँ रास्ता बना बनाया है और खुद अवज्ञा का द्योतक है।

मैं खड़ा हो गया था। कोट बाँहों में डाल लिया था, हैट हाथ में था। इस भाँति चलने को उद्यत, मैं उनके साने खड़ा हुआ अपने को भयंकर असमंजस में अनुभव कर रहा था। झुककर उनके पैर छू लूँ! हाँ, जरूर छूने चाहिए, पर मुझसे कुछ बन नहीं पड़ रहा था। उस समय मैंने, मानों देर हो रही हो भाव से, कलाई में बँधी घड़ी को सामने करके देखा और जरा माथा झुकाकर कहा- ''अच्छा बुआ प्रणाम।''

बुआ ने कहा, ''सुखी रहो भैया।'' लेकिन उस आर्शीवाद का स्नेह और कंपन कानों की राह प्राप्त करके मेरी गति और तीव्र हो गई। मानों रुका नहीं कि जाने कौन मुझे पकड़ लेगा। तेज कदम बढ़ाता हुआ बाहर आया और सीधे स्टेशन की राह पकड़ ली। बाहर वह कोयले की दुकान दिखी, जहाँ वह व्यक्ति तराजू की डण्डी पर हाथ रखे हुए ग्राहकों को कोयला तोल रहा था। इस भय से कि वह मुझे देख न ले, झटपट नीचे आँख डालकर और तेज चाल से मैं बढ़ता चला गया, बढ़ता ही चला गया।

(7) घर पर माँ ने पूछा, ''कहाँ गए थे? सतीश कहता था कि तुम एक रोज उससे पहले कालिज से चल दिये थे।''

मैंने कहा, ''बुआ को खोजता रह गया था। वे उस नगर में रहती हैं।''

जैसे किसी ने उन्हें डंक मारा हो, माँ ने कहा, ''कौन?''

''बुआ? मै उनसे मिलकर आया हूँ।''

माँ ने जोर देकर कहा-

''सुन प्रमोद, तेरी बुआ अब कोई नहीं है। मेरे सामने उसका नाम न लेना।''

''लेकिन सुनती हो अम्मा, मैंने कहा,'' ''मैं उनको भूल नहीं सकता हूँ।''

माँ ने कहा, ''तू जो चाहे कर, पर खबरदार जो मुझसे उसकी बात कही। कुल- बोरन कहीं की!''

मन में एक गांठ सी पड़ती जाती थी। वह न खुलती थी, न घुलती थी। बल्कि कुछ करो, वह और उलझती और कसी ही जाती थी। जी होता था, कुछ होना चाहिए था, कुछ करना चाहिए, कहीं कुछ गड़बड़ है। कहीं क्यों, सब गड़बड़- ही- गड़बड़ है। सृष्टि गलत है, समाज गलत है, जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊटपटांग है। इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है। इससे जरूर कुछ होना होगा, कुछ करना होगा। पर क्या- आ? वह क्या है, जो भवितव्य है और जो कर्तव्य है?

मेरे विवाह - संबंध की फिर बात चल पड़ी थी। इस बार का रिश्ता माँ बहुत ही अच्छा समझती थीं। कुल, शील, संपदा, की दृष्टि से तो अच्छा था ही, लड़की भी सुंदर, सुशील और शिक्षिता

थी। देर यह थी कि मैं एक बार उनके यहाँ पहुँचकर कन्या को देख लूँ और कन्या मुझे देख ले। मैं इसको दिनों से टालता आया था। मुझे जाने क्यों अपने बारे में बहुत संकोच होता था। अपने में मैं शंकित ही बना रहता था, किसी तरह की अपनी बड़ाई भीतर से उबकर आती न थी। प्रशंसक मेरे भी थे। लेकिन अपनी प्रशंसा का कारण मुझे अपने में नहीं मिलता था। इसके विपरीत, अपन में जो मुझे मिलता था, उससे मैं कुछ और निराश हो आया था।

लेकिन इस बार वहाँ जाना ही पड़ा, और संयोग की बात कि उन्हीं डॉक्टर साहब के घर पर बुआ से भेंट हुई।

देखता हूँ कि डॉक्टर के घर पर छोटे बच्चे- बच्चियों को पढ़ा रही हैं, वे और कोई नहीं बुआ ही हैं। उस समय तो मैं कुछ नहीं बोला और उन्होंने मुझे देखकर न देख सकने का सा भाव दिखाया, लेकिन उस कारण मैं वहाँ कुछ काल प्रकृतस्थ नहीं रह सका।

लड़की ने मुझे नापसंद नहीं किया। (जहाँ तक मैं यह बात मान सकता हूँ) मेरे उन्हें नापसंद करने का सवाल नहीं था। देखकर मैं उनके रूप, गुण की समीक्षा में जा ही सका, किन्नर लोक की परी क्या होती हैं! राजनन्दिनी (यही नाम था) को पहली निगाह देखकर मेरा निश्चय बन चुका था। मैं झेंपकर रह गया था, बोल कुछ भी नहीं सका था; लेकिन दुर्भाग्यवश उस समय मेरा वाक्चातुर्य मेरा साथ छोड़ जाने कहीं चला गया था। इस अकृतार्थता पर अपने से उस समय मैं रुष्ट भी हो आया हूँगा, ऐसा प्रतीत होता है। वह रोष हठात प्रकट भी हो गया था, क्योंकि मुझे ज्ञात हुआ कि समझा गया है कि लड़की मुझे पूरी तरह पसंद नहीं है। निश्चय है कि इस भ्रम को यथाशीघ्र पूर्ण सफलता के साथ मैंने छिन्न- भिन्न ही कर दिया था।

तब मेरा चित्त भीतर कहीं संदिग्ध था, पूरी तरह वह खिलकर नहीं आ रहा था। कभी भीतर इस बात पर मैं दब आता था कि सच्चाई मैं खोल नहीं रहा हूँ। वह दबाव इतना हो गया कि जब चलने का समय आया, तब मैंने डॉक्टर साहब से मानों चुनौती के साथ कहा कि मास्टरनी मेरी बुआ हैं।

पर विधि- लीला! स्थिति में तनाव आया और मेरे झुकने पर भी वह न सँभली। रिश्ता टूट गया। सास, राजनंदिनी की माता, दृढ़ता से उसके प्रतिकूल थीं और बिरादरी को भी उसमें आपत्ति थी। डॉक्टर साहब को उसके टूटने की बहुत ग्लानि थी। उनसे मेरे अन्त तक संबंध बने रहे। और वे मुझे पत्रों में सदा अपना पुत्र ही लिखते रहे। नन्दिनी के दूसरे विवाह पर उन्होंने बहुत असंतोष भी प्रकट किया और कदाचित् कुछ उसका दुष्परिणाम भी सुनने में आया था। यह पता अवश्य लगा कि बुआ वह जगह छोड़ गई हैं। छोड़कर कहाँ गई हैं? राम जाने। इस दुनिया में क्या जगह उनकी है कि जहाँ जाएँ? कोई ऐसी जगह नहीं है। इसलिए आज तो सब जगह उनकी अपनी है। सब एक समान है।

(8) बहुत हो गया?। अब समाप्त करूँ। जिन्दगी कहानी है और बुआ की कहानी में भी अब सार नहीं बचा है।

घटनाएँ होती हैं, होकर चली जाती हैं। हम जीते हैं, और जीते- जीते एक रोज मर जाते हैं। जीना किस उछाह से आरंभ करते हैं, पर उस जीवन के किनारे आते- आते कैसे ऊब, कैसी

उकताहट जी में भर जाती है। मैं इस लीला पर, प्रहेलिका पर सोचता रह जाता हूँ। कुछ पार नहीं मिलता,कुछ भेद नहीं पाता।

मेरी माँ का देहान्त हो चुका था। इसकी खबर उन्हें देर से लगी, पर लगाते ही उन्होंने पत्र मुझे लिखा था। उस पत्र को कितनी बार मैंने नहीं पढ़र है। पढ़ता हूँ और पढ़कर रह जाता हूँ। सोचता हूँ, पर नहीं, कुछ नहीं सोचता। वह सब जाने दो।

बात को क्यों बढ़ाऊँ। उसमें मेरी ही कापुरुषता बढ़ी हुई दीखेगी। सार यही कि मैं उनको नहीं ला सका। पथ्य आदि की भी कोई विशेष व्यवस्था कर सका, यह भी नहीं कह सकता। एक स्थानीय परिचित वकील मित्र को सौ - दो सौ जाने कितने रुपये दे आया था और कह आया था कि ध्यान रखना। उन्होंने ध्यान तो रखा ही होगा, पैसा भी खर्चा वाजिब ही वाजिब किया गया होगा, यह भी निश्चित है।

इसलिए आज जो असली तराजू है उसमें हलका तुल रहा हूँ। आज इस सारी वकालत के पैसे और बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा के ऊपर बैठकर सोचता हूँ कि क्यों मुझसे तनिक सरल सामान्य नहीं बना गया? इस सबका अब मैं क्या करूँ जब कि समय रहते प्रतिदिन के प्रेम से मैं चूक गया। यह सब मैल है जो मैंने बटोरा है। मैल कि मेरी आत्मा की ज्योति को ढाँक रहा है। मैं यह नहीं चाहता हूँ....।

उस बात को सत्रह से कुछ ऊपर ही वर्ष हो गए हैं। आज महाश्चर्य और महासंताप का विषय यह है कि किस अमानुषिकता के साथ सत्रह वर्ष मैं बुआ को बिना देखे काट गया? वह बुआ, जिन्होंने बिना लिये दिया। जिन्होंने कुछ किया, मुझे प्रेम ही किया। जिनकी याद मेरे भीतर अब अंगार सी जलती है। जिनका जीवन कुछ हो, ऊपर उठती लौ की भाँति जलता रहा। धुआँ उठा तो उठा, पर लौ प्रकाशित रही। उन्हीं बुआ को एक तरफ डालकर, किस भाँति अपनी प्रताणना करता रह गया।

आज दिन है कि खबर आती है कि वह मर गयीं। कैसे मर गयीं- जानने की कोई जरूरत नहीं है। जो जाने बैठा हूँ, वही कम नहीं है। उसी को पचा सकूँ, तो कुछ- का - कुछ हो जाऊँ।

बुआ तुम गयीं। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत् का आरंभ - समारंभ ही छोड़ दूंगा। औरों के लिए रहना तो शायद नये सिरे से मुझसे सीखा जाए, आदतें पक गई हैं; पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा, जितना अनिवार्य होगा। यह वचन देता हूँ।

पुनष्च- इसी के साथ सही करता हूँ कि जजी से अपना त्याग- पत्र मैंने दाखिल कर दिया है।

14.4 व्याख्या

इस उपन्यास में सामाजिक मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति को जैनेन्द्र उद्घाटित करते हैं। प्रमोद और मृणाल के माध्यम से सामान्य मनुष्य की दुविधा को विवेचित करने में उपन्यासकार सफल रहा है। जब प्रमोद के विवाह की बात चलती है प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की अवस्था को याद करने लगता है। प्रमोद अपनी बुआ से ससुराल जाने के मौके पर कहता भी है- ‘‘इसमें

दुविधा की क्या बात है? वह जगह पसंद नहीं है तो वहाँ न जाएँ।'' बस- यह बात ऐसी सरल नहीं है। इस तथ्य को अच्छी तरह समझा जा सकता है। पति-पत्नी की इच्छा-अनिच्छा को ही सब कुछ न समझने का कारण स्पष्ट करते हुए प्रमोद के माध्यम से जैनेन्द्र आगे कहते हैं कि अब मेरी समझ में यह तथ्य आ-गया है कि विवाह सूत्र में मात्र एक पुरुष और नारी ही परस्पर दाम्पत्य-सूत्र में नहीं बंधा करते अपितु यह दाम्पत्य सूत्र समाज को जोड़ता भी जोड़ता है। उसके माध्यम से समाज के दो समुदाय भी परस्पर एक होते हैं। चूंकि विवाह मात्र दो नर-नारियों का ही समझौता या आपसी ग्रंथि बंधन नहीं है और उसके द्वारा समाज भी जुड़ता है। अतः विवाह बंधन में नर-नारियों की इच्छा-अनिच्छा के कारण ही इस संबंध को नहीं तोड़ जा सकता है। विवाह का संबंध भावुकता से न होकर सामाजिक व्यवस्था से है, अतः दाम्पत्य सूत्र में बंधे नर-नारी भावुकता के वशीभूत होकर इस सूत्र को विच्छिन्न नहीं कर सकते हैं। विवाह संबंध की ग्रंथि तो ऐसी ग्रंथि है जो एक बार लग जाये तो किसी भी परिस्थिति में खुल नहीं सकती। प्रमोद का मानना है, साथ ही साथ समाज का भी मानना है कि विवाह जैसे दैवीय गठबंधन को तोड़ना किसी भी स्थिति में लाभकारी नहीं हो सकता। इस जगत में घटित होने वाली सुख-दुःखमयी घटनाओं के संबंध में विचार करते हुए प्रमोद सोचता है कि इस विश्व में जो बहुत सी घटनाएं हो रहीं हैं, वे उसी रूप में क्यों घटती हैं- उनमें कुछ अंतर क्यों पड़ता? - अर्थात् क्या ये घटनाएं किसी दूसरे रूप में नहीं घट सकती थीं, उनका निश्चित रूप में घटना ही अनिवार्य था? इस प्रकार के प्रश्नों कोई उत्तर नहीं मिल पाता। वह आगे सोचता है कि चाहे इस प्रश्न मिले अथवा नहीं मिले, किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जो घटित होना होता है आगे हो जाता है। भवितव्य को घटित होते देखकर तो ऐसा आभास होता है कि भाग्य के देवता अथवा विधि द्वारा नर-नारियों के भाग्य के बारे में जो कुछ भी लिख दिया जाता है, उसका एक अक्षर भी इधर-उधर नहीं होता है अर्थात् विधि का लिखा हुआ अक्षरश: घटित होता ही है। न तो नियति बदलती है और न भाग्य का लिखा ही बदलता है। प्रमोद प्रश्न करता है कि इस जगत में वे बहुत सी ऐसी घटनाएं घटित होती हैं जो सर्वथा अनहोनी और कारण रहित प्रतीत होती हैं। उनके मूल में किसी प्रकार का तर्क, संगति या कारण नहीं होता- जैसे सदाचारी का दुःख झेलना, युवा और स्वस्थ व्यक्ति की मृत्यु हो जाना, किन्तु वृद्ध और रुग्ण व्यक्ति के चाहने पर भी उसकी मृत्यु न होना आदि। प्रमोद पुनः यह सोचता है कि क्या विधाता के इन पहेली जैसे अनबूझ कार्यों को समझने-जानने की इच्छा की जा सकती है अथवा नहीं अर्थात् क्या व्यक्ति को इतनी भी स्वतंत्रता नहीं है कि वह विधि के कारनामों के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगा सके?

विद्वानों की शिक्षाओं के सम्मुख प्रश्न चिन्ह लगाते हुए प्रमोद कहता है कि वे इस तथ्य पर बल दिया करते हैं कि इस जगत में परमकल्याणकारी ईश्वर की ऐसी लीलाएँ विद्यमान रहती हैं जो कल्याणकारी होनी चाहिए। प्रमोद कहता है कि ज्ञानियों के इस कथन को मैं विवश भाव से स्वीकार कर लेता हूँ- क्योंकि यदि इस सिद्धांत को स्वीकार को स्वीकार न करूँ तो फिर जिउगा कैसे? अर्थात जीवन इतने अधिक दुःख दर्दों से भरा हुआ है। उसमें इतनी अधिक अकल्याणकारी घटनाए घटती हैं कि यह विश्वास करके जीवित रहा जा सकता है कि

कल्याणमय प्रभु अंततः भला ही करेंगे। हाँ ज्ञानियों की मान्यता का विरोध करते हुए प्रमोद कहता है कि मेरे हृदय में यह विचार बार- बार आता है कि मैं उस ईश्वर को पुकार कर कहूँ कि हे ईश्वर! बताया तो तुझे कल्याणमय जाता है किन्तु मुझे तो इस जगत में परिव्याप्त दुःख और चीत्कार को देख सुनकर रंचमात्र भी ऐसा आभास नहीं होता कि तेरी इस जगत के वासियों का कल्याण करने के प्रति रंचमात्र भी अभिरूचि है। इस विश्व में परिव्याप्त दुःखों की ओर इंगित करते हुए प्रश्न करता है कि हे जगतपिता यह तेरी संतानें करुण क्रंदन और चीत्कार करती रहती है। यह भी विचित्र स्थिति है कि तू लीला या खिलवाड़ करता है और उसके फलस्वरूप हम जगतवासियों को जन्म लेना या मरना पड़ता है? हम जो प्रयत्न करते हैं, वे निरर्थक और असफल क्यों रह जाते हैं, तथा विधि का विधान क्यों घटित होकर रहता है?

अंतिम अध्याय में मृणाल अपने भतीजे को पत्र लिखती है कि अगर उसका (प्रमोद) का प्रेम अपनी बुआ के प्रति समाप्त हो जाएगा तो उसकी जीवन शक्ति समाप्त हो जायेगी। उसके मन में प्रमोद के परिवेश जो श्रद्धा है वह टिक नहीं पाएगी। ऐसी स्थिति में पाप उस पर (मृणाल) हावी हो जायेगा और उसकी जिन्दगी उस पाप की छाया में लीन हो जाएगी। प्रमोद का प्रेम खोकर मणाल के पास और कोई सहारा नहीं रहेगा। उस स्थिति में उसका जीवन उसके हाथ से निकल जाएगा। मृणाल अंत में लिखती है कि इस विषाक्त वातावरण में रहते हुए भी वह अपने मन को उस परिवेश से ऊपर उठा लेती है और उसके प्रेम- अवलंब को पाकर वह ऐसे वातावरण में भी फेफड़ों में शुद्ध हवा भर लेती है। उसे डर है कि जब वह उसको इस परिवेश में देखेगा तो वह उससे घृणा करने लगेगा और तब सहज भाव से उसके लिए जीना कठिन हो जाएगा। जबकि मृत्यु का भय है, लेकिन अगर मृत्यु श्रद्धा के साथ हो तो वह वह मृत्यु सार्थक है। श्रद्धा -विहीन तो जीवन भी निरर्थक है।

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. नायिका कथा लेखक की ....थी।
2. कथा लेखक पेशे से .... है।
3. लेखक का नाम ....है।
4. ‘भाई पाप-पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी’ का वक्ता ....है।
5. बुआ.................स्त्री थी।
6. कथा लेखक उपन्यास के अन्त में..............देता है।

14.5 सारांश

‘त्यागपत्र’ के मूल पाठ का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपने जाना कि -

- उपन्यास-कला की दृष्टि से ‘त्यागपत्र’ अपने जीवन-दर्शन के कारण हिन्दी साहित्य में नवीन कीर्तिमान स्थापित करने में समर्थ रहा है।

- 'त्यागपत्र' में जैनेन्द्र जी की उपन्यास-कला चरम उत्कर्ष पर परिलक्षित होती है। अपनी सहज-सरल भाषा के माध्यम से उन्होंने सांकेतिक शैली में जीवन-दर्शन को उपन्यास में सफलतापूर्वक चित्रित किया है।
- 'त्यागपत्र' अपने कथ्य की नवीनता एवं प्रस्तुतीकरण में जैनेन्द्र के सभी उपन्यासों में श्रेष्ठ है। इसमें शब्दों के अर्थगर्भत्व को बड़े ही सूक्ष्म ढ़ंग से रूपायित किया गया है।

14.6 शब्दावली

- भवितव्य - जो कुछ घटित होना हो
- आर्तनाद - दुःख
- नीरवता - चुप्पी
- त्रास - पीड़ा

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. बुआ
2. जज
3. प्रमोद
4. कथा लेखक
5. पतिपरित्यक्ता
6. त्यागपत्र

14.8 संदर्भ ग्रंथ

1. त्यागपत्रः जैनेन्द्र कुमार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

14.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भटनागर, रामरतन – जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा।
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन।

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

ऐसे ही ब्याह के दिन आते गए और ब्याह हो गया। विवाह होने से पहले बुआ कई घण्टे अपनी छाती से मुझे चिपकाये बहुत-बहुत आँसू रोती रहीं।.....बुआ के जाते समय फूट-फूट कर

रोया। मैंने किसी की शर्म नहीं की। मैंने चलकर घूँघट वाली बुआ का आँचल पकड़ लिया। कह दिया मैं बिना बुआ के अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा, नहीं करूंगा।

1. उक्त गद्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या करें।

हाँ ज्ञानियों की मान्यता का विरोध करते हुए प्रमोद कहता है कि मेरे हृदय में यह विचार बार-बार आता है कि मैं उस ईश्वर को पुकार कर कहूँ कि हे ईश्वर! बताया तो तुझे कल्याणमय जाता है किन्तु मुझे तो इस जगत में परिव्याप्त दुःख और चीत्कार को देख सुनकर रंचमात्र भी ऐसा आभास नहीं होता कि तेरी इस जगत के वासियों का कल्याण करने के प्रति रंचमात्र भी अभिरूचि है। इस विश्व में परिव्याप्त दुःखों की ओर इंगित करते हुए प्रश्न करता है कि हे जगतपिता यह तेरी संतानें करुण क्रंदन और चीत्कार करती रहती है। यह भी विचित्र स्थिति है कि तू लीला या खिलवाड़ करता है और उसके फलस्वरूप हम जगतवासियों को जन्म लेना या मरना पड़ता है? हम जो प्रयत्न करते हैं, वे निरर्थक और असफल क्यों रह जाते हैं, तथा विधि का विधान क्यों घटित होकर रहता है?

2. उपरोक्त गद्यांश के उद्देश्य को उद्घाटित करें।

3. उक्त गद्यांश का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करें।

इकाई 15 – त्यागपत्र : संरचना व शिल्प

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 त्यागपत्र : आलोचनात्मक संदर्भ
15.4 सारांश
15.5 शब्दावली
15.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
15.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.9 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

''जैनेन्द्र कृत त्यागपत्र हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों की कोटि में एक प्रकाश-स्तंभ है। सन् 1937 में प्रकाशित हुए इस उपन्यास ने उस काल में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त मुंशी प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों के प्रवाह को नूतन मोड़ दिया था। जैनेन्द्र की उपन्यास-कला का श्रीगणेश यद्यपि प्रेमचन्द-काल के ही उत्तरवर्ती भाग में हुआ था, तथापि उपन्यास-क्षेत्र में जैनेन्द्र ने एक नवीन औपन्यासिक कला के साथ पदार्पण किया।" जैनेन्द्र के उपन्यास एक विशेष थीम को लेकर चलते हैं। यह थीम विवाहेत्तर संबंध, वैवाहिक समस्याएँ एवं स्त्री स्वातंत्र्य के संदर्भ से विकसित हुई है। जैनेन्द्र से ही मानव मन की गहराईयों में जाकर विश्लेषण करने की पद्धति हिंदी साहित्य में शुरू हुई। इस तरह से आप साहित्य में मनोविज्ञान का प्रवेश कराने वाले पहले कथाकार हैं। इस इकाई में 'त्यागपत्र' उपन्यास की समीक्षा उपन्यास के तत्वों के आधार पर करेंगे।

15.2 उद्देश्य

एम.ए.एच.एल 201की यह 15 वीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- उपन्यास के संरचना विधान का अध्ययन करेंगे।
- 'त्यागपत्र' के औपन्यासिक शिल्प का विवेचन कर सकेंगे।
- उपन्यास के मूल तत्वों से परिचित हो सकेंगे।
- 'त्यागपत्र' उपन्यास पर विविध विद्वानों के वक्तत्वों से परिचित हो सकेंगे।

15.3 त्यागपत्र : आलोनात्मक संदर्भ

मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों का वर्ण्य-विषय समाज में परिव्याप्त नाना प्रकार की समस्याएँ रही हैं, जबकि जैनेन्द्र ने समाज के स्थान पर व्यक्ति को या कहिए समष्टि के स्थान पर व्यष्टि को महत्व प्रदान किया। इस व्यष्टि या व्यक्ति में से भी जैनेन्द्र का झुकाव नारियों की ओर ज्यादा रहा है और उनके प्रायः सभी उपन्यास नारी-प्रधान ही हैं। इन नारियों को भी उन्होंने जटिल पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है, उनके जीवन में ऐसे उतार-चढ़ाव चित्रित किए हैं कि इन नारियों के चरित्र एक अबूझ पहेली जैसे बन गए हैं। सुप्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार शरतचन्द्र की उपन्यास-कला पर यह आक्षेप किया जाता है कि उन्होंने पतित नारियों का महिमान्वित अंकन करके एक प्रकार से सामाजिक रीति-नीति और परम्पराओं-मर्यादाओं के विरूद्ध कार्य किया है। हिन्दी साहित्य में यही आक्षेप जैनेन्द्र के प्रति किया जा सकता है, क्योंकि उन्होंने त्यागपत्र में मृणाल का चरित्रांकन जिस रूप में किया है वह अविश्वसनीय तो है ही, मृणाल का आचरण भी अनेक अवसरों पर अबूझ पहेली-सा प्रतीत होता है। यह सत्य है कि फ्रायडवाद की मान्याताओं के कारण नर-नारियों के आचरण प्रच्छन्न-प्रकट काम-भावना से अनुप्रेरित रहते हैं, किन्तु मृणाल के चरित्र की व्याख्या फ्रायडीय मान्यताओं के परिपार्श्व में भी भली प्रकार नहीं हो पाती है। आगे हम औपन्यासिक कला की दृष्टि से त्यागपत्र की सफलता-असफलता पर विचार करेंगे।

विद्वानों ने उपन्यास के छह तत्व स्वीकार किए हैं- कथावस्तु, पात्र और उनका चरित्र-चित्रण, देशकाल और वातावरण-योजना, कथोपकथन, भाषा-शैली और उद्देश्य अथवा संदेश। आगे हम एक-एक करके इन तत्त्वों की कसौटी पर त्यागपत्र की सफलता-असफलता की परख करेंगे।

कथावस्तु- त्यागपत्र की कथावस्तु संक्षिप्त ही है और उसका विकास पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) शैली के माध्यम से किया गया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र प्रमोद या जज एम0 दयाल अपने पद से इस्तीफा देते हुए उन कारणों का पुनरावलोकन करता है जिसके कारण उसे अपनी बुआ के नारकीय जीवन पर पश्चाताप होता है और वह तदर्थ स्वयं को भी अपराधी-सा मानते हुए अपने पद से त्यागपत्र दे देता है। वह याद करता है कि उसकी बुआ मृणाल के माता-पिता का उसके बाल्यकाल में ही निधन हो गया था और उसका भरण-पोषण प्रमोद के माता-पिता की देख-रेख में हुआ था। यद्यपि प्रमोद और मृणाल की आयु में काफी अंतर था, किन्तु शनैः शनैः मृणाल प्रमोद से ऐसी बातें और कुछ शारीरिक क्रियाएँ करने लगी थी, जिसके मूल में निश्चय ही कामासक्ति का हाथ स्वीकार किया जा सकता है। इसी क्रम में मृणाल अपनी सहेली शीला के भाई के प्रति आकर्षित हो उठी थी और किसी-न-किसी बहाने से शीला के घर जाती रहती थी। शीघ्र ही उसके इस आकर्षण का रहस्योद्घाटन हो गया तो उसको प्रमोद की माता ने बेंतों से खूब पीटा था और उसकी पढ़ाई स्थगित करवा दी थी। तदनन्तर उसका शीघ्र ही विवाह कर देने की चेष्टा की गई और इस क्रम में उसका विवाह अधेड़ उम्र के एक दुहाजू व्यक्ति के साथ कर दिया गया। मृणाल ने अपने पति को किसी सच्ची पतिव्रता स्त्री की तरह यह बात बता दी कि उसका

शीला के भाई के प्रति अनुराग था, जिसे सुनकर उसके पति ने उसका परित्याग कर दिया। मायके में माता-पिता न होने तथा भाई-भावज द्वारा दुत्कारे जाने की आशंका से मृणाल लौटकर अपने मायके नहीं आई और एक कोयला बेचने वाले व्यक्ति के आश्रय में रहने लगी। वह कोयले वाला उसके रूप पर आसक्त था और विवाहित व्यक्ति था, अतः वह गर्भवती मृणाल को शीघ्र ही उसके हाल पर छोड़ गया। मृणाल ने कुछ दिनों तक एक डॉक्टर के बच्चों को पढ़ाकर भी जीविकार्जन किया किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उस डॉक्टर की लड़की से प्रमोद का विवाह होने वाला है, तो इस विवाह-सम्बन्ध पर अपनी अमंगलकारी छाया न पड़ने देने के विचार से वहाँ से भी चली गई। प्रमोद ने उससे मिलकर यह आग्रह किया था कि वह घर लौट चले किन्तु प्रमोद के इस आग्रह को वह स्वीकार न कर सकी। इसके अनन्तर उसके जीवन में जो उतार-चढ़ाव आए, उनका अंतिम परिणाम यह निकलता दिखाया गया है कि वह चोरों, जेबकतरों और वेश्याओं की गंदी बस्ती में रहने लगती है। प्रमोद उससे वहाँ जाकर भी मिलता है, किन्तु उस स्थान को वह (मृणाल) सच्ची मनुष्यता का सूचक बताकर जहाँ व्यक्ति बाहर-भीतर से एक जैसा होता है, नहीं छोड़ती। वह प्रमोद से यह आग्रह अवश्य करती है कि यदि वह उसको धन देना चाहता है, तो इतनी अधिक मात्रा में धन दे कि वह उन समस्त पतित नारियों का उद्धार कर सके। इसके पश्चात मृणाल की मृत्यु हो जाने तथा प्रमोद द्वारा अपने जज के पद से त्यागपत्र देने की घटना के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है।

उपन्यास का कथानक संक्षिप्त, प्रवाहमय, रोचक और विश्वसनीय होना चाहिए। कहना न होगा कि आलोच्य उपन्यास का कथानक संक्षिप्त है और उसमें रोचकता तथा प्रवाह का भी अभाव नहीं है, हाँ जहाँ तक विश्वसनीयता का संबंध है, उपन्यास की अनेक घटनाएँ विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती है। इन घटनाओं में से भी विशेषतः मृणाल के आचरण से सम्बन्धित प्रसंग पाठकों की सहानुभूति नहीं अर्जित कर पाते है, क्योंकि उन्हें उसका आचरण अटपटा-सा प्रतीत होता है। जैसा कि कहा जा चुका है आलोच्य उपन्यास में पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैश बैक टेकनीक) का सफलतापूर्वक आश्रय लिया गया है और कथा का विकास प्रमोद द्वारा अपने जीवन की घटनाओं के पुनरावलोकन के माध्यम से कराया गया है। चूँकि प्रमोद और मृणाल का बाल्यकाल परस्पर सम्बन्धित रहा था तथा बाद में वह जब-तब मृणाल से मिलता रहता था, अतः मृणाल के जीवन पर भी इन मुलाकातों में ज्ञात हुई बातों के द्वारा प्रकाश डाला गया है।

पात्र-योजना एवं चरित्रांकन-कला - पात्र योजना एवं पात्रों की चरित्रांकन-कला की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि इसमें मात्र दो ही मुख्य पात्र हैं-मृणाल और प्रमोद। अन्य पात्रों में मृणाल की सहेली शीला, शीला का भाई, मृणाल का दुहाजू पति तथा कोयले वाला उल्लेखनीय हैं, किन्तु इन गौण-पात्रों की योजना मुख्यतः कथानक को गति प्रदान करने की दृष्टि से ही की गई है। उपन्यासकार ने उनका चित्रांकन करने की ओर रूचि प्रदर्शित नहीं की है। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास में सामान्यतः पात्रों की संख्या कम ही होनी चाहिए, क्योंकि तभी उपन्यासकार उनका चरित्र-चित्रण करने का अधिक अवसर प्राप्त कर पाता है। इस दृष्टि से जैनेन्द्र ने त्यागपत्र में मात्र दो ही पात्रों को प्रमुखता देकर उचित ही कदम उठाया है। इन दोनों

पात्रों में से भी उपन्यासकार ने प्रमोद का विस्तृत चित्रांकन नहीं किया है- वह भी मूलतः मृणाल के चरित्र के विभिन्न पक्षों के उद्घाटन का माध्यम मात्र है। अतः कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास नायिका प्रधान है और उसमें मात्र एक ही प्रधान पात्र के चरित्रांकन का प्रयास किया गया है। हाँ मृणाल का चरित्रांकन उपन्यासकार ने इस रूप में किया है कि सहज रूप में पाठकों के गले नहीं उतर पाता है। उदाहरण के लिए सामान्य नारी कदाचित् यह कदम नहीं उठाती कि वह अपने पति को अपने विगत काल के प्रेम-सम्बन्ध के बारे में बताए। उसके इस आचरण को तो उसके भोलेपन और सत्य-प्रेम का प्रतीक स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु मृणाल द्वारा कोयले वाले के साथ रहना और यह जानते हुए भी कि यह व्यक्ति मुझको छोड़कर चला जाएगा, उसको सर्वस्व समर्पित कर देना, समुचित प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार उसका वेश्याओं, चोरों, जेबकतरों आदि की बस्ती में रहना और इस तथ्य पर बन देना कि सच्ची मनुष्यता यहाँ ही है- यहाँ सभ्य जगत् जैसा मिथ्याडंबर नहीं है-आत्यंतिक रूप में ठीक होते हुए भी कोई अनुकरणीय प्रेरणा प्रदान नहीं कर पाता। स्वर्गीय पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का यह मत उचित ही है- ''जैनेन्द्र की मृणाल पहेली बन गई है, क्योंकि उन्होंने उसके अंतर्गत के भाव-सौंदर्य को परिस्फुट नहीं किया। प्रेम की वह क्या गरिमा थी, जिससे उसने कलंक, निन्दा और दुःख-तीनों को चुपचाप सहन कर लिया है।"

देशकाल और वातावरण-योजना - उपन्यास में वर्णित तथ्यों के अनुरूप देशकाल और वातावरण की योजना करने के फलस्वरूप उसकी वर्ण्यवस्तु की विश्वसनीयता में अभिवृद्धि हुआ करती है। आलोच्य उपन्यास क्योंकि मनोविश्लेषणात्मक श्रेणी का उपन्यास है अतः इसके अंतर्गत उपन्यासकार ने बाह्य वातावरण की अपेक्षा आन्तरिक वातावरण की नियोजना पर अधिक बल दिया है। डॉ. सुरेशचन्द्र निर्मल ने इस सम्बन्ध में उचित ही लिखा है- ''आंतरिक वातावरण आज के देशकाल के अनुसार या युगानुरूप है। आज व्यक्तिवादी समाज है, आज समाज की इकाई का महत्व ही सर्वोपरि है। अतः व्यक्ति की अपनी विचार-परिधि की आज के संदर्भ में इतनी विवृत्त श्रृंखला है कि नाना विकार अनजाने ही झाँक उठते हैं। सुविचारक उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास के आंतरिक वातावरण (मनोद्वन्द्व) को प्रस्तुत करते हुए उसे तर्क की कसौटी पर कसा है, दर्शन का पुट दिया है-

''मन में एक गाँठ-सी पड़ती जाती थी। वह न खुलती थी, न घुलती थी। बल्कि कुछ करो तो वह उलझती और कसती हो जाती थी जो कुछ होता था, जो कुछ होना चाहिए था, कुछ करना चाहिए, कहीं कुड गड़बड़ है। कहीं क्यों, सब गड़बड़-ही-गड़बड़ है। सृष्टि गलत है, समाज गलत है, जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊंटपटांग है। इसमें तर्क नहीं, संगति नहीं, कुछ नहीं है।"

''सैक्स, प्रेम और साहचर्य आधुनिक वातावरण में खूब पनप रहा है। स्वातंन्योत्तर काल के उपन्यासकारों ने इसका स्पर्श न किया होता, भला कैसे? जैनेन्द्र जी ने इसकी बड़ी अनूठी व्याख्या की है कि नर-नारी द्वैत कैसे निर्मित हुआ? वे कहते हैं कि समग्र में अंह चेतनाओं के पृथक् होते ही उनमें पर के सान्निध्य की चाह उत्पन्न हुई। इस चाह के दो रूप हो गए। एक ने

चाहा, 'वह मुझमें हो।' वह अहं स्त्रीत्व प्रधान हो गया है। दूसरे ने चाहा, 'मैं उसमें हूँ।' यह अहं पुरूष-युक्त हुआ। इस प्रकार एक ही अंह के दो रूप या उर्द्धनारीश्वर की पौराणिक कल्पना लेकर वे चले हैं। परम्परावादी पारिवारिक बन्धनों को तोड़कर उलकी लेखनी ने गति प्रवाहित की है। यथा, प्रमोद अपनी बुआ में अनुरक्त है और वह बुआ भी प्रच्छत्र वासनाओं से ढकी है। समाज में जाने कितने प्रमोद और मृणाल इस अनुक्त पिपासा के शिकार हो जाते हैं। यही जैनेन्द्र का मनोविश्लेषण बाह्मजगत् की ओर झाँकने की चेष्टा कर रहा है।" संक्षेप में कहा जा सकता है कि देशकाल और वातावरण-योजना की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास सफल है।

कथोपकथन या संवाद-योजना - नाटकीय शिल्प-विधान में तो कथोपकथन नाट्य-रचना के प्राण-तत्त्व होते ही हैं, उपन्यास-कला में भी उनका कम महत्व नहीं होता। कारण यह है कि कथोपकथनों के माध्यम से उपन्यासकार पात्रों का चारित्रिक उद्घाटन, कथा का विकास, कथानक की विलुप्त कड़ियों को जोड़ना आदि अनेक प्रयोजनों की सिद्धि करता है। इन कथोपकथनों की प्रथम विशेषता यह स्वीकार की जाती है कि वे सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले कथनों की तरह संक्षिप्त होने चाहिएँ। आलोच्य उपन्यास के कथोपकथनों में यह गुण विद्यमान है, जैसे-

मैंने कहा- ''मैं वहाँ गया था-

धीमे से बोलीं- ''मैं जानती थी, तुम जाओगे।"

''अस्पताल में भी गया था-तुमने मुझे नहीं लिखा?"

''क्या लिखती?"

''अच्छा मुन्नी कहाँ है?"

''मर गई।"

''मर गई ! कब मर गई?"

''दस महीने की होकर मर गई। रोग से मरी, कुछ भूख से मरी।"

''मिशनवाले उसे माँगते थे। दे क्यों नहीं दिया?"

वे चुप रहीं। अनन्तर मैं ही बोला-

''यहाँ कैसे आयीं?"

''भटकते-भटकते ही आई।"

उपर्युक्त कथोपकथन की योजना मृणाल और प्रमोद के मध्य नियोजित की गई है। कहना न होगा कि दोनों के ही प्रश्न और उत्तर बड़े संक्षिप्त हैं।

कथोपकथनों के माध्यम से उपन्यासकार कथानक के छूटे हुए या विलुप्त अंशों की सूचना पाठकों को दे दिया करते हैं। इस दृष्टि से उपर्युक्त कथोपकथन को ही उदाहरण-स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है, जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने पाठक-वर्ग को इस तथ्य की सूचना दे दी है कि मृणाल को एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो मर चुकी है। इस कथोपकथन से इस तथ्य का भी पता चलता है कि प्रमोद अपनी बुआ को खोजते-खोजते वहाँ के अस्पताल में भी गया था।

कथोपकथनों का स्वाभाविक तथा वक्ता पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप होना भी आवश्यक स्वीकार किया जाता है, जिनका आलोच्य उपन्यास के कथोपकथनों में पूर्णतः निर्वाह हुआ है। एक उदाहरण अवलोकनीय है-

''तुम बड़े अच्छे लड़के हो। कौन-सी क्लास में पढ़ते हो?"

''सेविन्थ क्लास।"

''सेविन्थ क्लास?" खूब! प्रमोद, जाकर कहना मैं अभी एक महीना यहीं हूँ। समझे?"

मैं खूब समझ गया था।

''क्या समझे?"

''-मैं एक महीना यहीं हूँ।"

शीला के भाई इस पर खूब हँसे।

''तुम नहीं भाई-मैं, मैं, मैं।"

उपर्युक्त कथोपकथन पूर्णतः स्वाभाविक है। बच्चे से जैसा कहा जाता है, वह उसको प्रायः उसी प्रकार दुहरा दिए करता है, चाहे ऐसा करने से अर्थ में परिवर्तन हो जाता हो। यही कारण है कि शीला का भाई प्रमोद को समझाने का प्रयास करता है कि वह एक महीने तक यहीं रूकेगा, किन्तु प्रमोद से इस बारे में पूछे जाने पर वह जो उत्तर देता है उसका अर्थ यह निकलता है कि प्रमोद एक महीने तक यहीं रूकेगा। पात्रों की मनःस्थिति की अनुकूलता की दृष्टि से निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है-

थोड़ी देर के बाद कहतीं, ''तुझे पतंग अच्छी लगती है?"

मैं कहता- ''हाँ।"

''तू पतंग उड़ाएगा?"

मैं कहता- ''बाबूजी मना करते हैं।"

इस पर वह एकाएक मुझे अंक में भरकर उत्साह के साथ कहतीं- ''हम तुम दोनों संग-संग पतंग उड़ाएँगे कि खूब दूर ! सबसे ऊँची ! उड़ाएगा?"

मैं कहता, ''पैसे दो, मैं लाऊँ।"

वह थेड़ी देर मुझे देखती, वह दृष्टि अनबूझ होती थी, मानों मैं उन्हें दीख ही न रहा होऊँ। मुझसे आर-पार होकर जाने वह क्या देख रही हैं! एकाएक शिथिल पड़कर कुछ लजाकर कहती- ''चल रे पतंग से बालक गिर जाते हैं।"

उपर्युक्त कथोपकथन में विशेषतः मृणाल द्वारा कहे गए उद्गार उसकी मनोभावना के पूर्णतःअनुकूल हैं। वह प्रमोद के प्रति आकर्षित है और असके साथ-साथ पतंग उड़ाने की कामना के मूल में उसका यह आकर्षण ही क्रियाशील है। हाँ, अंततः वह अपने विचार पर स्वयं ही संकुचित हो उठती है और इसीलिए लजाकर पतंग उड़ाने से इंकार कर देती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास में कथोपकथनों की योजना सफल रीति से की गई है।

भाषा शैली - भाषा-शैली की दृष्टि से त्यागपत्र में जैनेन्द्र ने अपने अन्य उपन्यासों की भाँति ही कहीं अतीव सरल तथा कहीं अत्यधिक सांकेतिक और गूढ़ भाषा-शैली का प्रयोग किया है।

शब्दावली की दृष्टि से उन्होंने भावभिव्यक्ति में सहायक तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी- सभी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है। उनके प्रायः सभी उपन्यासों और कहानियों में एक ऐसी विशिष्ट प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है कि उसे पढ़कर तुरंत इस बात का ज्ञान हो जाता है कि यह जैनेन्द्र की रचना है। उन्होंने देशज शब्दावली का भी पर्याप्त मात्रा में सार्थक प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं-

(क) तू अब उसे कभी याद मत करियो।

(ख) हम लोगों का असली घर पछाँह की ओर था।

(ग) वहाँ अपनी गिरस्ती अच्छी तरह संभालना।

(घ) गुड़ीमुड़ी करके मेरी ओर फेंक दिया।

(ड़) नाहक किसी को क्यों तकलीफ दोगी?

विदेशी शब्दों में उन्होंने माई डियर, पोजीशन आदि शब्दों का तो प्रयोग किया ही है, कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार अंगेजी के वाक्यों का भी प्रयोग किया गया है।

त्यागपत्र मनोविश्लेषणत्मक उपन्यास है, अतः उसमें इस श्रेणी के उपन्यासों की तरह पात्रों के मनोभावों के सूचक उद्गारों एवं स्वगत-कथनों की बहुलता है-

बुआ ने कहा - बता, मैं आज तेरी क्या हूँ? कभी यह सच था कि मैं तेरी बुआ थी, पर उस बात को मैंने अपने हाथों से तोड़-ताड़कर धूल मे पटक दिया है। धूल में से उठाकर उसी के निर्जीव छूछे पिंजर को तू हठपूर्वक सामने लाकर सत्य कहना चाहता है, यही झूठ है। मैं कहती हूँ, प्रमोद, मुझे मेरे भाग्य पर छोड़। जा, जा, अब यहाँ मत ठहर। देर तक यहाँ रहेगा, तो ठीक न होगा।"

(क) फिर उसी बेबस भाव से मुझे देखते रहकर मानो यंत्र की भाँति उस खत को फाड़कर नन्हें-नन्हें टुकड़ों में भर दिया। (उत्प्रेक्षा)

(ख) शीला ऐसी हो गई, जैसे ऊद-बिलाव के आगे मूसी। (उपमा)

(ग) मैं यों तो काफी बड़ा हो चला था, निरा बच्चा अब नहीं था, तो भी मैं उस समय बुआ के अंक में चुपचाप बालक-सा पड़ा रहता था। (उपमा)

(घ) गर्म तवे पर जैसे जल की बूंदें चटक कर छिटक रही हैं वैसे ही मेरी ओर से कोई ठंडा बोध तब विस्फोट ही पैदा करता। (दृष्टांत)

उनकी भाषा-शैली के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि ''जैनेन्द्र जी की भाषा-शैली आत्मीयता एवं विश्वसनीयता के विशेष तत्त्वों से समन्वित है। भावों का समाहार, संक्षिप्तता और अपनत्व की प्रभविष्णुता वहाँ विशेष रूप से विद्यमान है। भाषा दार्शनिकता के कारण सजीव होते हुए भी लाक्षणिक व्यंजना से कुछ बोझिल अवश्य है। अतः सामान्य पाठक के लिए लाक्षणिक व्यंजना एक गोरखधंधा भी बन जाती है, किन्तु प्रबुद्ध पाठक के लिए, थोड़ा-सा बौद्धिक झुकाव रखने वाले पाठक के लिए वह दुर्भेद्य तो नहीं ही कही जा सकती।''

संक्षेप में जैनेन्द्र की भाषा-शैली सरल-सजीव होते हुए भी यत्र-तत्र दुरूहता लिए हुए है।

त्यागपत्र जैनेन्द्र के उत्कृष्ट मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में से एक है। प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने मृणाल के माध्यम से एक नारी के अंतर्मन की ग्रन्थियों को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है।

मृणाल द्वारा पतिव्रत धर्म की जो मनमानी परिभाषा स्वीकार की जाती है, जिसके अनुसार वह सामाजिक नियमों की अपेक्षा अपने विवेक को अधिक महत्व प्रदान करती है, यही तथ्य उसके जीवन के विकास का निमित्त बन जाता है। इस उपन्यास की प्रमुख विशेषता इसका कथानक-शिल्प है। जैनेन्द्र ने इसमें कुछ अभिनव प्रयोग भी किए हैं, जो इस प्रकार हैं-

पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग - त्यागपत्र के उपन्यासकार जैनेन्द्र द्वारा कथा-शिल्प की नूतन विधा का आश्रय लिया गया है और वह है पूर्वदीप्ति प्रणाली। इसमें घटनाओं का वर्णन उस रूप में नहीं किया गया है जिस प्रकार परम्परागत उपन्यासों में घटनाओं का विकास हुआ करता है। कथानक का आरंभ उपन्यास की नायिका की मृत्यु की घटना के साथ किया गया है जो सामान्य कथा-शिल्प के उपन्यासों के अन्तर्गत नहीं हुआ करता है। प्रमोद किसी अन्तर्द्वन्द्व में ग्रस्त चित्रित किया गया है-

''....नहीं भाई, पाप-पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ कानून की तराजू की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की जरूरत को भी जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि जिनके ऊपर राई-रत्ती नाप-जोख्कर पापी को पापी कहकर व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जानें। मेरे बस का वह काम नहीं है। मेरी बुआ पापिष्ठा नहीं थीं, यह भी कहने वाला मैं कौन हूँ। पर आज मेरा जी अकेले में उन्हीं के लिए चार आंसू बहाता है। मैंने अपने चारों ओर तरह-तरह की प्रतिष्ठा की बाड़ खड़ी करके खूब मजबूत जमा ली है। कोई अपवाद उसको पारकर मुझ तक नहीं आ सकता, पर उन बुआ की याद जैसे मेरे सब-कुछ को खट्टा बना देती है। क्या वह याद मुझे अब चैन लेने देगी? उनके मरने की खबर अभी पाकर बैठा हूँ। वह सुखपूर्वक नहीं मरी, पर इतना तो मैं उनकी मौत के दसियों वर्ष पहले से जानता था। फिर भी यह जानना चाहता हूँ कि अन्त समय क्या उन्होंने अपने इस भतीजे को भी याद किया था? याद किया होगा, वह अनुमान करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।" प्रमोद के उपर्युक्त अंतर्लाप द्वारा कथावस्तु का उद्घाटन अथवा आरंभ किया गया है, जिससे हमें यह ज्ञात हो जाता है कि प्रमोद की बुआ की मृत्यु हो चुकी है। वह पापिष्ठा थी अथवा नहीं, यह प्रश्न भी यहाँ उभर कर पाठकों के सामने आ जाता है-क्योंकि इस विषय में स्वयं प्रमोद भी आश्वस्त नहीं है।

कथा के इस प्रकार उपस्थापन के पश्चात् प्रमोद भावनाओं और विचारों में खोकर अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करता है और उसके इस विगत जीवन के साथ ही उपन्यास की नायिका मृणाल का जीवन भी जुड़ा हुआ है। अपनी वंश-परम्परा का परिचय देते हुए प्रमोद स्पष्ट करता है कि उसकी बुआ उससे चार-पाँच वर्ष बड़ी थीं और माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह प्रमोद के माता-पिता के संरक्षण में पाली-पोसी गई थी।

पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से ही प्रमोद ने मृणाल के अप्रतिम सौंदर्य पर इन शब्दों में प्रकाश डाला है-

''बुआ का तब का रूप सोचता हूँ, तो दंग रह जाता हूँ। ऐसा रूप कब किसको विधाता देता है। जब देता है, तब कदाचित् उसकी कीमत भी वसूल कर लेने की मन-ही-मन नीयत उसकी रहती है। पिताजी तो बुआ की मोहिनी मूरत पर रीझ-रीझ जाते थे।"

इस अवतरण द्वारा एक ओर तो उपन्यासकार ने मृणाल की सुन्दरता पर प्रकाश डाला है। जबकि दूसरी ओर विधाता द्वारा सौंदर्य देकर उसकी कीमत वसूलने की बात कहकर पाठकों के अन्तर्मन में यह जिज्ञासा जाग्रत कर दी है कि मृणाल के जीवन में भी अवश्य ही कुछ अनहोनी घटित होनी चाहिए तभी प्रमोद ने इस प्रकार की भावना व्यक्त की है।

इसके अनन्तर उपन्यासकार ने पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से ही उन घटनाओं का चित्रण किया है जिनसे प्रमोद और मृणाल की घनिष्ठता पर प्रकाश पड़ता है। इसके साथ ही इन घटनाओं का उद्घाटन होता गया है कि किस प्रकार मृणाल शीला के भाई के सम्पर्क में आती है और उससे मिलने-जुलने में होने वाली देर के कारण घर पर भावज से पिटती ही नहीं है अपितु उसकी पढ़ाई छुड़वाकर उसका विवाह कर दिया जाता है। आगे की घटनाओं पर प्रकाश भी प्रमोद के आत्मालाप या चिन्तन के माध्यम से ही डाला गया है और उसके स्व-पति से विच्छेद, एक पुरूष के साथ भागकर दूसरे नगर में आ रहने, उसको भी छोड़ देने पर ट्यूशन पढ़ाकर गुजारा करने वहाँ से भी उखड़कर गन्दे लोगों की बस्ती में रहने की घटनाएँ भी इसी प्रकार विकसित हुई हैं। अतः कथानक-शिल्प की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास की प्रथम विशेषता तो यही है कि उस युग में जब मुंशी प्रेमचन्द कथा-जगत् पर छाए हुए थे और उन्हें उपन्यास सम्राट् कहकर गौरवान्वित किया जा रहा था, जैनेन्द्र ने उनकी लीक से हटकर एक दूसरे प्रकार का कथानक अपनाया और कथा-योजना में भी एक नूतन प्रकार के कथाशिल्प का प्रयोग किया।

कथानक में विश्वसनीयता का समावेश - वैसे त्यागपत्र की कहानी एक सर्वथा काल्पनिक कहानी ही प्रतीत होती है किन्तु उपन्यासकार ने ऐसे कौशल से काम लिया है कि यह हमको किसी सच्ची घटना पर आश्रित कहानी प्रतीत होती है। इस उद्देश्य के लिए उपन्यासकार ने कृति के आरंभ में ही निम्नांकित टिप्पणी देकर पाठकों के मन में यह भ्राँति उत्पन्न करने की चेष्टा की है कि यह एक सच्ची घटना पर आधारित उपन्यास है-

''सर एम दयाल जो इस प्रांत के चीफ जज थे और जजी त्यागकर इधर कई वर्षो से हरिद्वार में विरक्त जीवन बिता रहे थे। उनके स्वर्गवास का समाचार दो महीने हुए पत्रों में छपा था। पीछे कागजों में उनके हस्ताक्षरी के साथ एक पांडुलिपि पायी गई, जिसका संक्षिप्त सार इतस्ततः पत्रों में छप चुका है। उससे एक कहानी ही कहिए, मूल लेख अंग्रेजी में है। उसी का हिन्दी उल्था यहाँ दिया जाता है।"

उपर्युक्त उदाहरण से ऐसा प्रतीत होता है कि सर एम0 दयाल ने अपनी कोई निजी डायरी अंग्रेजी में लिखी थी। चूँकि डायरी में व्यक्ति के जीवन की सच्ची घटनाएँ ही अंकित हुआ करती है, अतः इसमें भी उनके जीवन का सत्य वृतांत ही रहा होगा। हमारे उपन्यासकार ने और कुछ न करके मात्र यह किया है कि अंग्रेजी में लिखी गई डायरी का हिन्दी में अनुवाद कर दिया है। अतः इसकी धारणाएँ सत्य ही होनी चाहिए।

हाँ, यह मात्र मतिभ्रम उत्पन्न करने का ही प्रयास है, क्योकि इसका ज्ञान थोड़ा-सा विचार करने पर ही हो जाता है। जिस व्यक्ति के कागज-पत्रों का उल्लेख किया गया है, उसका

नाम एम0 दयाल है। उपन्यास के अंत में भी यह व्यक्ति जिसका मूल नाम प्रमोद मिलता है, न जाने कैसे एम0 दयाल के नाम से हस्ताक्षर करते दिखाया गया है-

''बुआ, तुम गई। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत का आरम्भ-समारंभ ही छोड़ दूँगा। औरों के लिए रहना तो शायद नए सिरे से मुझसे सीखा न जाए, आदतें पक गई हैं, पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा, जितना अनिवार्य होगा। यह वचन देता हूँ।

भगवान तुम मेरी बात सुनते हो। वैसे चाहे न भी दो, पर वचन तोड़ूँ तो मुझे नरक अवश्य ही देना।"

ह. एम0 दयाल

ता0 3-4

''इसी के साथ सही करता हूँ कि जजी ने अपना त्याग-पत्र मैंने दाखिल कर दिया।"

ह. एम0 डी0

ता0 4-4

हम इस संदर्भ में इस तथ्य की ओर संकेत करना चाहते हैं कि प्रमोद ने पहले हस्ताक्षर एम0 दयाल के रूप में कैसे किए हैं? एम0 से क्या मजिस्ट्रेट शब्द संकेतित है? यदि यह बात हो तो भी हस्ताक्षर करते हुए व्यक्ति अपने पद को अपने नाम के अंश-रूप में प्रयुत्त नहीं करता। हस्ताक्षरों में दूसरा शब्द 'दयाल' है उपन्यास के प्रारंभिक अंश में लेखक ने 'सर एम0 दयाल' का उल्लेख किया है। हो सकता है कि दयाल प्रमोद का सरनेम रहा हो किन्तु इसमें प्रमोद का कहीं भी उल्लेख नहीं है। जब उपन्यास में सर्वत्र प्रमोद नाम का उल्लेख मिलता है, किन्तु वह व्यक्ति अपने हस्ताक्षर एम0 दयाल के नाम से करता हो, तो यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि ये दोनों व्यक्ति एक ही हैं? वैसे इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि यदि प्रारंभिक अंश में और उपन्यास के अंत में पी0 कुमार के नाम से भी हस्ताक्षर किए जाते तो भी यह तथ्य इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता था कि इस उपन्यास की सभी घटनाएँ वास्तविक और सच्ची हैं।

मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रधानता - आलोच्य उपन्यास के कथानक-शिल्प की एक अन्य विशेषता इसमें स्थल-स्थल पर मनोवैज्ञानिक चित्रण को स्थान देना है। एक आलोचक ने उचित ही लिखा है कि ''त्यागपत्र उपन्यास की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र मनोविज्ञान का आश्रय लिया गया है।यों तो प्रत्येक उपन्यासकार अपने उपन्यास में स्वाभाविकता के रक्षार्थ मानव-मन का आश्रय लेता है किन्तु जैनेन्द्र जी की विशेषता यह है कि उन्होंने मानव-मन की गुत्थियों को पकड़ा है और अनका विश्लेषण किया है। मानव की कुंठाए क्या है, उनके कारण क्या है और उनमें अनुरूप कार्य क्या हैं? सम्पूर्ण उपन्यास इसी पर आधारित है और साथ ही यह भी दूसरा मुख्य कार्य-विषय है कि नारी चाहे कितनी ही पतन की ओर क्यों न चली जाए, उसका सहज-स्वाभाविक अहं कभी नहीं मरता। मृणाल के माध्यम से जैनेन्द्र जी ने इस अहं भावना का अत्यंत सशक्त चित्रण किया है।"

यौन कुंठाओं के चित्रण में जैनेन्द्र जी फ्रायड के यौन-सिद्धान्त से विशेष रूप से प्रभावित हैं। 'फ्रायड' का मत है कि मूल रूप में वासना प्रत्येक नर-नारी के मन में विद्यमान है कुछ उसे परिष्कृत रूप में व्यक्त करते हैं और कुछ उसी मूल रूप में। यहाँ तक कि बच्चों तक में भी यह वासना-भावना प्रधान होती है। पुरूष का नारी के प्रति और नारी का पुरुष के प्रति अवस्था-विशेष से आकर्षित होना तो स्वाभाविक है ही, इसके अतिरिक्त भी अवचेतन में यही काम-भावना प्रत्येक अवस्था में विद्यमान रहती है। मृणाल शीला के भाई के प्रति और शीला का भाई मृणाल के प्रति आकर्षित होता है, यह तो अवस्था-जन्म काम-भावना है। जैनेन्द्र जी ने फ्रायड के सिद्धान्त से प्रभावित होकर अन्य अवस्थाओं में भी काम-भावना की उपस्थिति मानते है। मृणाल तथा प्रमोद में बुआ-भतीजे का सम्बन्ध है, अवस्था में भी अन्तर है। किन्तु फिर भी लिंग-वैपर्यय होने के कारण दोनों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति आकर्षण है। प्रमोद मृणाल का प्रत्येक कार्य करने को तत्पर है, उसकी प्रिय वस्तु उसे भी अच्छी लगती है-शीला का भाई उसे भी अच्छा लगना इसका एक उदाहरण है, और वह प्रत्येक उचिततानुचित कर्म मृणाल की प्रसन्नता के लिए करता जाता है, महज एक आकर्षण के वशीभूत होकर ही।

अभ्यास प्रश्न

(1) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. त्यागपत्र उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है।
2. त्यागपत्र उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 1937 ई0 है।
3. त्यागपत्र नायिका प्रधान उपन्यास है।
4. त्यागपत्र मनोविश्लेषणात्मक परम्परा का उपन्यास है।

(2) टिप्पणी कीजिए –

1. मृणाल

....
....
....
....

2. कथानक

....
....
....
....

(3) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. उपन्यास में..............मुख्य तत्व होते हैं।
2. पात्र योजना में...............पर दिया गया है।
3. संवाद को...............भी कहते है।

4. उपन्यास का................मुख्य घटनाक्रम से जुड़ा हुआ होना चाहिए।
5. त्यागपत्र में मुख्य पात्र................है।

15.4 सारांश

आलोच्य उपन्यास की वर्ण्य-वस्तु और उसकी परिणति कुछ ऐसी उलझनमयी है कि स्पष्ट रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि रचनाकार का उद्देश्य या संदेश क्या है? फिर भी जैनेन्द्र ने मृणाल का जिस रूप में चरित्रांकन किया है और उसको अनेकानेक प्रकार के दुःख-दर्द सहन करते चित्रित किया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि उनका ध्यान उन समस्याओं को उभारने की ओर केन्द्रित रहा है; जिनके कारण मृणाल को अंततः वेश्यावृत्ति के लिए विवश होना पड़ता है। इस उपन्यास का रचनाकाल सन् 1937 ई0 है। यद्यपि नारियों की सामाजिक स्थिति में सन् 2012 ई0 तक भी अर्थात् रचना के पच्चहत्तर वर्ष पश्चात् भी विशेष परिवर्तन नहीं आया है, किन्तु उन दिनों तो नारियों की स्थिति और भी अधिक बदतर थी। उन्हें पैतृक सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त नहीं था, यही कारण है कि मृणाल के माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण उसे अपने भाई और भावज का मोहताज होना पड़ता है। उन दिनों प्रेम-विवाह होना अत्यधिक दुष्कर था, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि इस दृष्टि से आजकल की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन आ गया है। विशेष परिवर्तन न आने पर भी चलचित्रों के प्रभाव तथा सरकार द्वारा अंतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिए जाने के कारण आजकल का व्यक्ति प्रेम-विवाह को चतुर्थ-दशक की अपेक्षा अधिक मात्रा में सहन कर सकता है। हाँ, उन दिनों जैसा कि स्वाभाविक था, मृणाल की पढ़ाई ही बंद नहीं कर दी जाती, अपितु उसका शीघ्र विवाह किए जाने की जल्दी में तथा सम्यक् दहेज न जुटा पाने के कारण मृणाल का विवाह अधेड़े उम्र के एक दुहाजू व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त 'त्यागपत्र' में जैनेन्द्र नियतिवादी भी परिलक्षित होते हैं। यही कारण है कि वे भाग्य में विश्वास करते हैं- इसका क्या उत्तर है? उत्तर हो अथवा न हो, पर जान पड़ता है भवितव्य ही होता है। नियति का लेख बंधा है। एक भी अक्षर उसका यहाँसे वहाँ न हो सकेगा। वह बदलता नहीं, बदलेगा नहीं। पर विधि का वह अतर्क्य तर्क किस विधाता ने बनाया है, उसका उसमें क्या प्रयोजन है- यह भी कभी पूछकर जानने की इच्छा की जा सकती है या नहीं?"

15.5 शब्दावली

- नियति - प्रारब्ध, पहले से तय
- दुहाजू - शादी शुदा व्यक्ति
- भावज - भाभी
- पुनरावलोकन- पुनः समीक्षा करना

15.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य

(3) 1. छ:
2. चरित्र चित्रण
3. कथोपकथन
4. शीर्षक
5. 2

15.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, माया एवं शर्मा, कृष्णदेव – त्यागपत्र : एक विवेचन।
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास।

15.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी, रामचन्द्र – हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

15.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. औपन्यासिक शिल्प अथवा उपन्यास-कला की दृष्टि से त्यागपत्र की सफलता-असफलता का विवेचन कीजिए।
2. जैनेन्द्र कृत उपन्यास 'त्यागपत्र' की शिल्पगत विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।
3. 'त्यागपत्र' उपन्यास के शिल्प का सोदाहरण विवेचन-विश्लेषण कीजिए।
4. ''त्यागपत्र में घटनाएँ बहुत हैं लेकिन उसकी कथा-संरचना में उनकी भूमिका क्षीण है।" - 'त्यागपत्र' उपन्यास के शिल्प का विश्लेषण करते हुए उपर्युक्त कथन की समीक्षा कीजिए।
5. क्या आप जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' को एक सफल उपन्यास मानते हैं? 'त्यागपत्र' की तात्विक समीक्षा करते हुए उत्तर दीजिए।